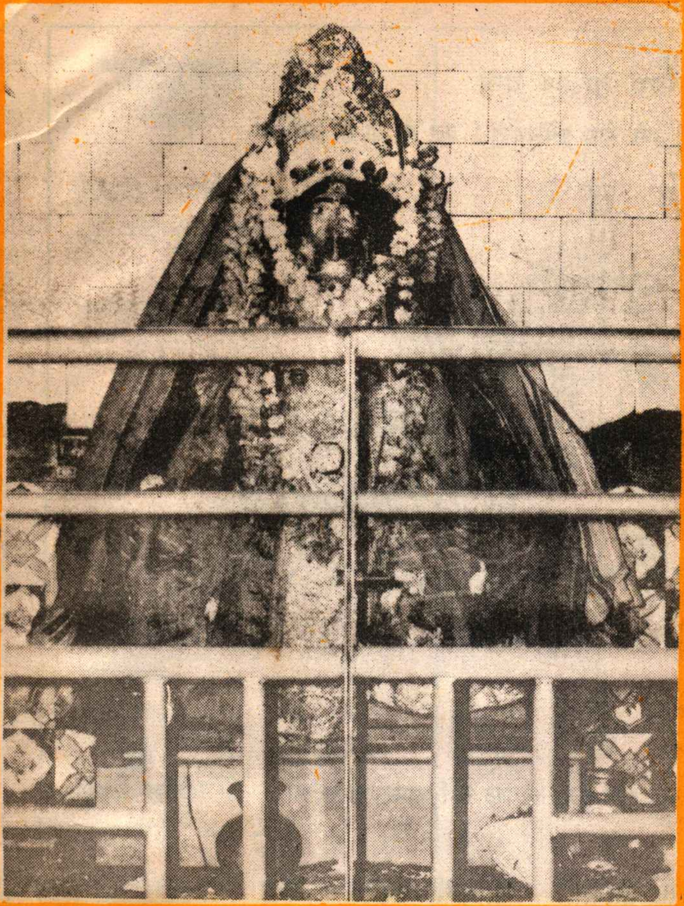

५० वर्षों से प्रकाशित

कौल-कल्पतरु चण्डी

साधन-माला

धन-प्रद मङ्गल-स्तोत्र
रोग-निवारक प्रयोग
एवं
शत्रु-बाधा निवारक प्रयोग

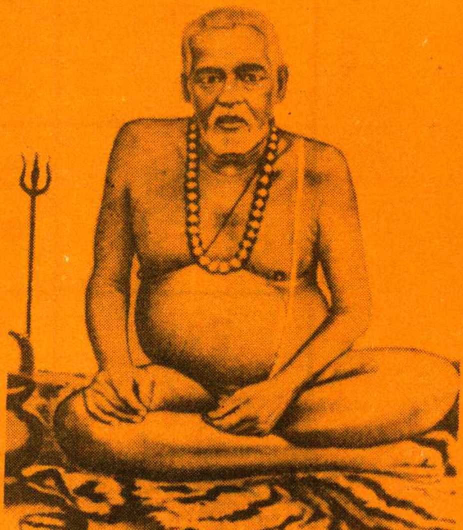

महा-सिद्ध श्रीवामा-क्षेपा

त्रिपुर-भैरव संरक्षण यन्त्र

मकर - ध्वजाय विद्महे मन्मथाय धीमहि तन्नो काम प्रचोदयात् । क्लूं ब्लूं द्रां ह्रीं क्लीं सः

(२)

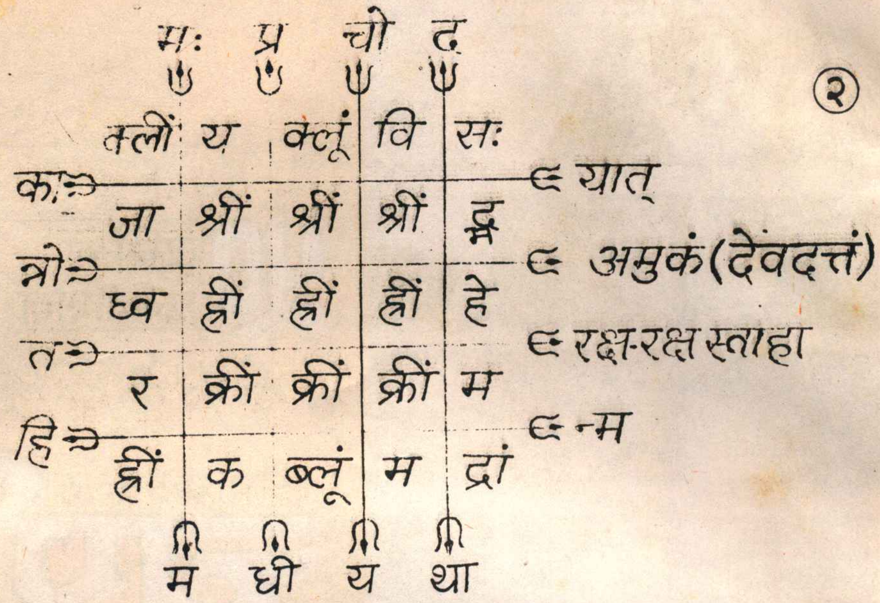

मयूर - शिखा (मोर - पङ्ख) अथवा श्वेत गुंजा की जड़ से लिखकर धारण करें ।

●

महा - प्रेतादि, ब्रह्म - राक्षस, डाकिनी - शाकिनी- निवारण यन्त्र

(३)

३	ह्रों २२	क्रों २१	शं २०	५
	नमो भूत-प्रेत	महा-ब्रह्म- राक्षसान्	भैरवाय दह-दह पच-पच स्वाहा	
३	२० रं	२१ लं	२२ हुँ फट्	५

श्वेतार्क (मंदार) की जड़ अथवा श्याम धतूर की जड़ से लिखकर धारण करें ।

ॐ ह्रीँ

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग—२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ५

वार्षिक शुल्क : रु० ५५
आजीवन शुल्क : रु० ५५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ५००/३००
आजीवन : ५०००/३०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद के पते पर भेजें।

मुद्रक
रा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग—२११००६

हिन्दू - धर्म के ज्ञान - मय क्रिया-पक्ष
की
'राष्ट्र-भाषा' में शोध-पूर्ण प्रस्तुति

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ५१ **अङ्क ४**

'पार्थिव' सम्वत्, आषाढ़, २०४९ वि० जुलाई, १९९२

ॐ

इस अंक में

- मोक्ष का राज-मार्ग 'योग' ... ९८
- 'धर्म' के आचरण का समय ... ९८
- व्रत ... ९९
- हिन्दू और सेवा-सङ्गठन ... ९९
- षड्-रिपु ... १००
- श्रीगुरु-महिमा ... १०१
- 'कर्म'-योग ... १०२
- स्वर-योग ... १०३
- देवी भ्रमर-वासिनी ... १०५
- कवच के चमत्कार ... ११०
- रहस्योद्घाटन ... ११२
- साधन-माला ... ११३-१२०

'मोक्ष' का राज-मार्ग—'योग'

—डा० सम्पूर्णानन्द

'योग'—'मोक्ष' का 'राज-मार्ग' है। 'गीता' में 'योग' के द्वारा जिस 'आत्म'-दर्शन की बात कही गई है, उसके द्वारा जीवन की सभी शङ्काओं का समाधान हो सकता है।

'गीता' का प्रथम शब्द **'धर्म-क्षेत्र'** है। 'धर्म' की विभिन्न परिभाषाएँ की गई हैं, पर 'गीता' में जिस 'धर्म' का प्रतिपादन किया गया है, वह **'सर्व-श्रेष्ठ धर्म'** है। 'धर्म' को उसके सही स्वरूप में समझ कर ही, **'गीता' के सन्देश** को समझा जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि **'गीता' के सन्देश** को, हम अपने जीवन में उतारें।

आज की परिस्थिति में, जब चारों ओर भय और शङ्का का वातावरण है, महा-पुरुषों का कथन याद आता है कि—**'दूसरों के साथ उतना ही प्रेम करो, जितना अपने साथ।'** यह व्यक्त स्वरूप में थोड़ा कठिन लगेगा, परन्तु जितना हम **'वेदान्त दर्शन'** की दृष्टि से इसे देखें, तो हमें लगेगा कि यह उचित है क्योंकि 'वेदान्त' के अनुसार—**'दूसरा कुछ है ही नहीं, द्वैत की भावना ही सारे कष्टों का मूल है। इस भावना को समाप्त करना ही 'गीता' का उद्देश्य है।**

'धर्म' के आचरण का समय

—आचार्य श्री तुलसी

मानव सोचता है, **'धर्म'** तो अवकाश के समय आचरण करने की वस्तु है, जब उसे अन्यान्य कार्यों से छुटकारा मिल जाए। यह सोचना गलत है। **भगवान् महावीर** ने उद्बोधन देते हुए बताया था कि—**'जब तक बुढ़ापा शरीर को जर्जर न बना दे, व्याधि उस पर आक्रमण कर, उसे जीर्ण - शीर्ण न कर दे, जब तक शरीर के अङ्ग - प्रत्यङ्ग शक्ति - हीन न हो जाएँ, तब तक मानव 'धर्म' का सम्यक् आचरण करे।'**

अभिप्राय यह है कि **'धर्म'**, जीवन में हर समय हर घड़ी आचरण करने का विषय है। स्वस्थावस्था में तो उस ओर और अधिक जागरूकता रक्खी जानी चाहिए। वृद्धावस्था में, जर्जर, रोग से जीर्ण व शरीर के अङ्गोपाङ्गों की शक्ति से हीन व्यक्ति, अपने दुःख और पीड़ाओं से विलखता हुआ **'धर्म'** को सतत स्मरण रख सकेगा, यह इतना सम्भव नहीं लगता।

व्रत

—पूज्य स्वामी शिवानन्द जी

'व्रत' मन की शुद्धि के लिए किया जाता है। यह **नैमित्तिक या ऐच्छिक कर्म** का एक अंश है। यह एक प्रकार का **आत्म-संयम** है।

हिन्दुओं के अनेकानेक **'व्रत'** प्रचलित हैं। जैसे **एकादशी व्रत** (प्रत्येक पक्ष की एकादशी), **सत्यनारायण व्रत** (भगवान् सत्यनारायण के उपलक्ष में), **वर-लक्ष्मी व्रत** (भगवती महा-लक्ष्मी के उपलक्ष में), **अनन्त पद्मनाभ व्रत, सावित्री व्रत, चान्द्रायण व्रत, कृच्छ्र व्रत, प्रदोष व्रत** आदि। कई लोग भगवान् **सूर्यनारायण के प्रसन्नार्थ रविवार** को तथा कई **भगवान् शङ्कर के प्रसन्नार्थ सोमवार** को 'व्रत' रखते हैं। **प्रत्येक मास की पूर्णिमा को** भगवान् विष्णु की पूजा के निमित्त **सत्यनारायण व्रत** किया जाता है। **शिवरात्रि** के दिन **भगवान् शिव का व्रत**, पूजन, अर्चन, जागरण किया जाता है। **कृष्ण-जन्माष्टमी** को भगवान् कृष्ण के जन्मोत्सव के उपलक्ष में, **व्रत-पूजन** किया जाता है।

सभी व्रतों का मुख्य उद्देश्य **चित्त की शुद्धि, इन्द्रियों का दमन तथा भगवान् की भक्ति करना** है। संसारी लोग धन कमाने तथा अनेकानेक कर्मों में सदा व्यस्त रहते हैं। कम-से-कम इन **'व्रत'** के दिनों में तो उन्हें **भगवान् की पूजा, जप, ध्यान, पठन-पाठन, सत्सङ्ग** तथा **आत्म-विश्लेषण** के लिए अवसर प्राप्त हो ही जाता है। **चान्द्रायण और कृच्छ्र-व्रत**—हृदय की **पवित्रता** तथा **पापों के प्रायश्चित्त** के हेतु किए जाते हैं।

प्रत्येक **'व्रत'** अपना निजी महत्त्व रखता है। विविध प्रकार के व्रतों में कई लक्षण तो सामान्य होते हैं। साधक **'व्रत'** के दिन **ब्रह्मचर्य** धारण करता है। भोजन नहीं करता, केवल **दूध और फलाहार** पर रहता तथा मांस, मछली आदि का सेवन नहीं करता।

हिन्दू और सेवा-संगठन

हिन्दू-धर्म की सुरक्षा के लिए चिन्तित हिन्दुओं का यह रोना निरर्थक है कि अन्य धर्म के लोग हमारे भाइयों को अपनी गोद में लेते चले जा रहे हैं। मुख्य विचारणीय प्रश्न ये हैं कि ग़ैर - हिन्दुओं को हिन्दू बनाने से हमें किसने मना किया है ? अन्य धर्मों के मिशन की तरह मजबूत, धनी सङ्गठन हम क्यों नहीं बनाते ? गरीब, दलित, उपेक्षित तथा पीड़ित भाइयों के लिए हम अस्पताल, स्कूल आदि की व्यवस्था क्यों नहीं करते ? हम क्यों नहीं अपने भाइयों की सेवा करते ? किसने कहा है कि 'हिन्दू - धर्म' के रक्षक लोग, अन्य धर्मों की मिशनरियों की तरह 'जन-सेवा' का काम न करें ? क्यों नहीं हिन्दू सेठ अपनी थैली खोल देते ? क्यों नहीं हिन्दू संन्यासी तथा अन्य स्वयं-सेवक हिन्दुओं की सेवा के लिए कमर कसते ? हमारे घर में मकड़ी का जाला और गर्द भर गया है क्योंकि हम उसकी सफाई नहीं करते ! हमारी इस दुर्दशा पर यदि दुनिया हँसती है, तो क्या बुरा करती है ? यदि हिन्दू-धर्मावलम्बी अपने धर्म की विशेषताओं का ठीक से प्रचार करें और उसके पीछे मिशनरियों की तरह 'सेवा - सङ्गठन' का बल रखें, तो सारी दुनिया हिन्दुओं की भक्त हो जाए।

षड्-रिपु

● श्री धन शमशेर जङ्ग बहादुर राणा

१ काम २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद तथा ६ मात्सर्य—मानवता तक पहुँचने न देनेवाले गति-रोधक ये छः रिपु हैं। प्रत्येक मनुष्य के लिए इन्हें जीतने का प्रयत्न करना आवश्यक है। इन पर विजय प्राप्त करना ही 'जीवन से मुक्त' होना है। इसका अभ्यास किस प्रकार करना होगा, इस विषय में अपनी अल्प-बुद्धि के अनुसार यहाँ कुछ विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सबसे प्रथम **'काम' (कामना)** को हटाने के लिए हमें सदा यह विचार ध्यान में रखना होगा कि इस संसार में ईश्वर सब किसी को समान सुख तथा दुःख दे रहा है। किसी को सुख से अधिक दुःख दे रहा है। किसी को सुख से अधिक दुःख या किसी को दुःख से अधिक सुख कदापि नहीं हो सकता। यह हम लोगों का भ्रम है। हम लोग अपना दुःख, दूसरे से छिपाने तथा वास्तविक सुख से अधिक सुख, दूसरे को दिखाने की चेष्टा करते हैं। इससे हम लोग अपने से दूसरे को सुखी समझते हैं। यह केवल भ्रम है। जो धनी-सुखी लोग हैं, उनको मिष्ठान्न के अतिरिक्त अन्य मामूली खाद्य-पदार्थों की रुचि नहीं होती। फिर नरम आसन के बिना यत्र-कुत्र बैठ नहीं सकते, सोने की बात तो दूर ही रही एवं कोई सेवक न होने से तो वे लोग जीवन-यात्रा में एक पग भी नहीं चल सकते ! वे लोग अपने से कुछ भी न कर सकें, तो एक कैदी और उनमें फर्क ही क्या रहा ? खाने में कुछ भी स्वाद का गोल-माल होगा, तो वे भूखे ही रहेंगे। शैया कुछ गड़-बड़ होगी, तो उन्हें नींद नहीं आएगी। फिर धन की क्षति की या मान-सम्मान की बहुत चिन्ता होगी। भिखारी बनने का डर भी मन में होगा। अतः शरीर से जितने सुखी हैं, उतने ही मन से दुखी हैं।

दूसरी ओर एक भिखारी भिक्षाटन कर जो कुछ लाया, उसके स्वाद की पर्वाह न कर उसे खा लिया और जहाँ भी मिला, सो लिया। उसके मन में केवल पेट की ही चिन्ता रहेगी। फिर दूसरे के आश्रय की भी जरूरत न होने से, वह स्वतन्त्र है। अतः उसके जितने शारीरिक कष्ट हैं, उतने ही मानसिक सुख हैं एवं सुख-दुःख सम हैं।

अब **'क्रोध'** के विषय में यथा-ज्ञान लिखता हूँ। मेरे गुरु-देव कहते थे कि जब तुमको क्रोध आए, तब आँख बन्द कर भ्रू-मध्य में शुक्ल-वर्ण प्रणव (ॐ) का चिन्तन करना। यह मेरे अनुभव की बात है कि इस अभ्यास से **'क्रोध'** का शमन हो जाता है। कभी-कभी इस अभ्यास को **'क्रोध'** भुला देता है और क्रोध आ जाता है। ऐसी स्थिति में सहज अवस्था आने पर आँखें बन्द करने से 'क्रोध' क्षणिक हो जाएगा।

'लोभ' के विषय में **'आखिर तो सबका ही नाश होगा, अपना शरीर तक छोड़ना होगा'**—यह भावना बराबर मन में रखने से, **'लोभ'** हटने की सम्भावना होती है। **'मोह'** देवोपासना से ज्ञान प्राप्त करने पर ही हट सकता है। **'मोह'** हटाने का अन्य उपाय नहीं है। **'मद'** के हटाने के लिए, कामोद्दीपन होनेवाली बात कभी न करे, वैसे दृश्य भी न देखे। कामोद्दीपन करानेवाले पुष्टि-पदार्थ भी मन ठीक न होने समय तक खाना ठीक नहीं है। 'स्त्री' मात्र से **'मातृ-भाव'** रखकर व्यवहार करने से **'मद'** के भी हट जाने की सम्भावना होती है। **'मात्सर्य'** के दमन करने का साधन पूर्व-वर्णित समता का भाव रखने का अभ्यास ही है।

***

श्री गुरु-महिमा

*** श्री स्वामी विद्यानन्द**

सबसे प्रथम हमें यह जानने की आवश्यकता है कि संसार में मनुष्य-जन्म का ध्येय क्या है? क्या मनुष्य का जन्म खाने, पीने और मौज उड़ाने के लिए हुआ है? नहीं, ऐसा नहीं है। यदि ऐसा होता, तो फिर मनुष्य और पशु में भेद ही क्या होता! कहा है—

आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीना पशुभिः समानाः।।

अर्थात् १ भोजन करना, २ सोना, ३ डर लगना, ४ स्त्री-प्रसङ्ग करना—ये सब बातें मनुष्य और पशु में समान-रूप से पाई जाती हैं। उक्त चारों काम मनुष्य भी करता है और पशु भी। तो फिर मनुष्य और पशु में भेद ही क्या रहा? भेद है, तो केवल **'धर्म'** का। **'धर्माचरण'** केवल मनुष्य ही कर सकता है, पशु नहीं। यदि मनुष्य में **'धर्म'**, **'आचार'** नहीं है, तो वह मनुष्य—पशु ही के समान है।

यही कारण है कि संसार में चौरासी लाख योनियों में मनुष्य-योनि को सबसे श्रेष्ठ माना गया है क्योंकि मनुष्य में **'विवेक-बुद्धि'** होती है, जो अन्य योनियों के प्राणियों में नहीं होती। सत्यासत्य का निर्णय मनुष्य ही कर सकता है, अन्य नहीं। सत्यासत्य-निर्णय ही **'धर्म'** है, **'कर्तव्य'** है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए हमारे शास्त्रों ने दो मुख्य कर्तव्य बताए हैं—**१ जीव की जीविका करना** और **२ जीव का उद्धार करना। जीव की जीविका से तात्पर्य है**—अपना, अपने माता-पिता, स्त्री-पुत्रादि सम्वन्धियों का भरण-पोषण करना तथा **जीव के उद्धार** से तात्पर्य है—जीवात्मा को परमात्मा में संयोजित करना अर्थात् ईश्वर-साक्षात्कार करना। इन दोनों कार्यों के जानने व उनमें निपुणता प्राप्त करने के लिए दो प्रकार के गुरुओं की आवश्यकता होती है। इन्हीं को क्रमशः **'शिक्षा-गुरु'** व **'दीक्षा-गुरु'** कहते हैं।

'शिक्षा-गुरु' अनेक हो सकते हैं। जैसे विद्यालय, पाठशाला में अध्यापक, कालेज में प्रोफेसर तथा कला-कौशल, व्यापार-व्यवसायादि सिखानेवाले सभी शिक्षक **'शिक्षा-गुरु'** की श्रेणी में आते हैं। **'शिक्षा-गुरु'** के समान **'दीक्षा-गुरु'** अनेक नहीं हो सकते। कारण **'दीक्षा-गुरु'** वेद, पुराणादि शास्त्रों का जाननेवाला, भव-बन्धन से मुक्त करानेवाला होना चाहिए। जब तक हमारे इस अज्ञान का कि—**'मैं जीव हूँ, मैं तुच्छ हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ'**—नाश नहीं होगा, हमें 'ज्ञान' की प्राप्ति नहीं हो सकती और जब तक 'ज्ञान' का प्रकाश नहीं होगा, तब तक भगवत्-साक्षात्कार कैसा? अतः अज्ञान के नाश तथा ज्ञान के प्रकाश के लिए ही—**'दीक्षा-गुरु'** की आवश्यकता है।

गुरु, मन्त्र और इष्ट (देवता)—ये पृथक्-पृथक् दिखते हुए भी तत्त्वतः एक हैं। तन्त्रों में कहा है कि 'मन्त्र', 'गुरु' से प्राप्त होता है, अतः 'मन्त्र', 'गुरु' का पुत्र है। 'मन्त्र' के द्वारा 'इष्ट' प्रकट होता है, अतः इष्ट (देवता) 'मन्त्र' का पुत्र है। इस क्रम से गुरु, 'मन्त्र' का पिता और 'इष्ट' का पितामह हुआ।

ध्यान-मूलं गुरु-मूर्तिः, पूजा-मूलं गुरु-पदं। मन्त्र-मूलं गुरु-वाक्यं, मोक्ष-मूलं गुरु-कृपा।।

'गुरु' की महिमा बताते हुए शास्त्रों में और भी कहा गया है। सबसे प्रसिद्ध उक्ति है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात् पर-ब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

'कर्म-योग'

*** ब्रह्मचारी श्री नारायण देव, ऋषिकेश**

भक्ति-योग, ज्ञान-योग का मतलब लोग भले ही समझते हों, लेकिन **कर्म-योग** के अर्थ और महत्त्व का समझना आज भी कठिन-सा मालूम होता है। यही कारण है कि **कर्म-योग** के प्रति लोगों की भ्रान्ति बनी हुई है। **भगवद्-गीता** में यद्यपि इसकी व्याख्या सुस्पष्ट रूप से की गई है, तथापि लोग इसे स्पष्टतः समझ गए हों, ऐसी बात नहीं कही जा सकती। वास्तव में जिस कर्म के साथ **निष्काम भाव** लगा रहेगा, उसे ही **कर्म-योग** में स्थान मिल सकता है। स्वार्थ-रहित निष्काम भावना से प्रेरित कर्म ही **कर्म-योग** है। गरीबों की सेवा-सहायता, रोगी की परिचर्या, आदि कर्म आप भले ही करते हों, लेकिन यदि आपकी यह भावना है कि इस सेवा से आप पुण्य कर रहे हैं, जिसके पुरस्कार में आपके लिए स्वर्ग में स्थान सुरक्षित है, तो फिर वह **कर्म-योग** नहीं है और चाहे कुछ भी हो।

फिर 'कर्म' है क्या ? 'कर्म' आपका 'कर्तव्य' है। फिर 'कर्तव्य' क्या है ? आपके लिए निर्धारित कार्यों को पूरा करना, आपका कर्तव्य है। ये कार्य अनिवार्य हैं। इन्हें आप स्थगित नहीं कर सकते। उसके लिए पुरस्कार की आशा करनी ही नहीं चाहिए। अपितु यदि उसके परिणाम-स्वरूप कुछ विपद भी आए, तो भी वे कार्य अनिवार्य हैं। आपको तो इतना भी सन्तोष न होना चाहिए कि आप अपना कर्तव्य कर रहे हैं, इसलिए आप श्रेष्ठ पुरुष हैं। यह फल की आशा हो गई। वह **निष्काम वृत्ति** नहीं रही। कर्म करते हुए भी आप कर्त्ता नहीं हैं। आप फल की आशा न करें, लेकिन कर्म तो आपको करना ही होगा। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को यही उपदेश दिया था।

घायल का प्रथमोपचार, अकाल के दिनों में खिचड़ी और रविवार को भीगे चने या काशी में पैसे वितरित करना **कर्म-योग** नहीं है। **कर्म-योग** का सार्थक व्यवहार तो **आश्रम-धर्म के पालन** में है। वही कर्तव्य है। आश्रम के अनुसार सर्व-प्रथम **ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, अनुशासन, संयमित जीवन, शिक्षा** आदि होनी चाहिए। गार्हस्थ जीवन में प्रवेश करने पर, गृहस्थ के सभी धर्मों का पालन करना परमावश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। पत्नी तथा शिशुओं का लालन-पालन, सन्तान की शिक्षा-दीक्षा, उन्हें कर्मशील बनाना, परिवार-पड़ोसी के प्रति गृहस्थ-धर्म तथा दान-पुण्य सभी उसमें सम्मिलित हैं। तथ्य यह है कि यह सब कर्तव्य समझ कर करना होगा, न कि यह मानकर कि आप कोई विशिष्ट पुरुष हैं या **जन-सेवक** हैं, या कि स्वर्ग में स्थान सुरक्षित हो रहा है।

चार आश्रमों के साथ ही **सन्ध्या-पूजन, भजन, दान, पुण्य, जन-सेवा, देश-सेवा** सभी लगी हुई है। **वीर्य-रक्षा** तथा **सात्विक भोजन** सभी आश्रमों में निहित है। पति और पिता के रूप में भी **वीर्य-रक्षा** का नियम है और वास्तव में शरीर एवं मन तभी तक स्वस्थ रह सकता है, जब तक नियमित जीवन व्यतीत किया जाता है। स्मरण रहे कि निर्धारित कार्य करना ही **कर्म-योग** है।

स्वर-योग

[गताङ्क से आगे]

उदय एवं अस्त का ज्ञान

१ 'लय'-योग में **पञ्च-भूत-धारणा** से, २ 'राज'-योग में **नाड़ी-शोधन** से, ३ 'हठ' - योग में **षट्-कर्म-पूर्वक षण्मुखी मुद्रा** द्वारा और ४ 'मन्त्र'-योग में **तत्त्व-वीजों का उनके चक्रों में पुरश्चरणानुष्ठान** से तत्त्वों का स्पष्ट ज्ञान होता है। ये चारों पद्धतियाँ क्रियात्मक विज्ञान का अङ्ग होने के कारण इनमें प्रत्यक्ष निर्देशन आवश्यक है। गुरु के निर्देश में ही इन्हें सिद्ध किया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त भगवान् पशुपति ने एक सरल रास्ता भी निर्धारित किया है और वह है अनुभव का रास्ता। इस रास्ते में किसी भी प्रकार की यौगिक अथवा मान्त्रिक क्रियाएँ करने की आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक तत्त्व एक विशेष परिणाम का उत्पादक होता है एवं प्रत्येक तत्त्व में शेष चारों तत्त्व भी विद्यमान रहते हैं। इसका कारण यह है कि सभी तत्त्व एक दूसरे में अनुस्यूत हैं। अतः तत्त्वों के परिणामों पर लक्ष्य करने के दीर्घ-कालीन अभ्यास से तत्त्वों का स्पष्ट ज्ञान होने लगता है।

'पृथ्वी'-तत्त्व का परिणाम है—**आयाम (लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई)**; 'जल' - तत्त्व का परिणाम है—**रस-स्वाद**; 'अग्नि'-तत्त्व का परिणाम है—**वर्ण, रङ्ग**; 'वायु' - तत्त्व का परिणाम है—**देश, दूरी** और 'आकाश'-तत्त्व का परिणाम है—**मानसिक सम्वेग**। इन्हीं पाँच परिणामों के ऊपर सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन कर इनका अभ्यास करने से 'स्वर' में तत्त्व के उदयास्त का ज्ञान सरलता-पूर्वक हो जाता है।

तत्त्वों का उदय और श्वास-गति

प्रत्येक तत्त्व के उदय-काल में नासा-छिद्र से चलते हुए 'श्वास की स्थिति' बदलती रहती है, जो इस प्रकार है—यदि नासा-छिद्र के मध्य से श्वास चल रहा है, तो 'पृथ्वी'-तत्त्व, यदि नीचे की ओर से श्वास चल रहा है, तो 'जल'-तत्त्व, यदि ऊपर की ओर श्वास चल रहा है, तो 'अग्नि'-तत्त्व, यदि तिरछा श्वास चल रहा है, तो 'वायु' - तत्त्व और यदि श्वास घूम - घूम कर, भँवरे के समान चल रहा है, तो 'आकाश'-तत्त्व की स्थिति जानना चाहिए।

तत्त्वों का उदय और आकृति

प्रत्येक 'तत्त्व की भिन्न - भिन्न आकृतियाँ' होती हैं, जिनसे प्रत्येक तत्त्व की पहचान सरलता-पूर्वक हो सकती है। यथा—किसी निर्मल दर्पण के ऊपर नाक से जोर से श्वास छोड़ने पर यदि 'चौकोर आकृति' बने, तो पृथ्वी-तत्त्व, 'अर्ध-चन्द्राकार' आकृति बने, तो जल-तत्त्व, 'त्रिकोणाकार' आकृति बने, तो अग्नि-तत्त्व, 'लम्ब-गोल' आकृति बने, तो वायु-तत्त्व और 'बिन्दु-बिन्दु' दिखें, तो आकाश - तत्त्व की स्थिति जानना चाहिए।

तत्त्वों का उदय और रंग

प्रत्येक तत्त्व का अपना एक 'विशेष रङ्ग' होता है। तत्त्वों के रङ्गों को देखने की विधि इस प्रकार है—दोनों हाथों के दोनों अँगूठों से दोनों कानों के छिद्रों, दोनों तर्जनी अँगुलियों से आँखों, दोनों मध्यमा अँगुलियों से नासा-छिद्रों और दोनों अनामिका तथा दोनों कनिष्ठा अँगुलियों से मुख को बन्द करने पर यदि पीला रङ्ग दिखे, तो पृथ्वी - तत्त्व, श्वेत रङ्ग दिखे, तो जल - तत्त्व, लाल रङ्ग दिखे, तो अग्नि-तत्त्व, नीला या मेघ-वत् काला रङ्ग दिखे, तो वायु-तत्त्व और रङ्ग-बिरङ्गा दिखे, तो आकाश-तत्त्व की उपस्थिति जानना चाहिए।

तत्त्वों का उदय और श्वास-परिमाण

प्रत्येक तत्त्व के उदय होने पर जिस प्रकार श्वास की गति में परिवर्तन होता है, ठीक उसी प्रकार 'श्वास का प्रमाण या उसकी दूरी' भी परिवर्तित होती है। तत्त्वों के प्रमाण तथा उसकी मापन-विधि इस प्रकार है—बारीक पींजी हुई रुई (कपास) या महीन धूल, किसी कड़े गत्ते पर रखकर धीरे-धीरे नासिका के पास लाने पर जहाँ वह कँपने लगे, वहीं रुक जाना चाहिए। फिर उस दूरी को नाप लें। यदि वह दूरी १२ अंगुल है, तो पृथ्वी-तत्त्व, १६ अंगुल है, तो जल-तत्त्व, ८ अंगुल है, तो वायु-तत्त्व तथा ४ अंगुल है, तो अग्नि-तत्त्व का उदय-काल होगा।

अब शेष रहा आकाश-तत्त्व। आकाश का अर्थ है 'शून्य', आकाश - तत्त्व की स्थिति के समय स्वर-परिवर्तन होता है। अतः नासिका के भीतर ही श्वास-प्रवाह होता है, इसलिए आकाश-तत्त्व शून्य होकर निकल जाता है। **विशेष ज्ञातव्य**—आकाश के अतिरिक्त शेष तत्त्वों की दूरी को अभ्यास - पूर्वक घटाकर, उन्हें आकाश-तत्त्व में विलीन किया जा सकता है, जिससे मनुष्य अजरामर हो सकता है। इसी महा-विज्ञान को जानकर गोरक्षनाथादि सिद्ध सम्प्रदाय अजरामर शरीर-धारी हुए थे।

तत्त्वों का उदय और विशिष्ट स्वाद

प्रत्येक तत्त्व की उपस्थिति के समय मुख में एक विशेष 'स्वाद' की अनुभूति होती है, जो इस प्रकार है—यदि मुख में मीठा स्वाद हो, तो पृथ्वी-तत्त्व; कषाय है, तो जल-तत्त्व; तिक्त है, तो अग्नि-तत्त्व; अम्ल या खट्टा है, तो वायु-तत्त्व और कटु या स्वाद - हीन दशा है, तो आकाश - तत्त्व का उदय - काल जानना चाहिए।

तत्त्वों का उदय और मानसिक संवेग

पृथ्वी - तत्त्व की उपस्थिति मनुष्य में भय, जल-तत्त्व की उपस्थिति लोभ, अग्नि - तत्त्व की उपस्थिति लज्जा, वायु-तत्त्व की उपस्थिति सन्तुष्टि तथा आकाश-तत्त्व की उपस्थिति दुःख का आभास कराती है। सूक्ष्मता से मन का निरीक्षण करते रहने पर जिस समय जो मानसिक सम्वेग सूक्ष्म रूप से ज्ञात हो, उस समय उसी तत्त्व की उपस्थिति या उदय-काल जानना चाहिए। [क्रमशः]

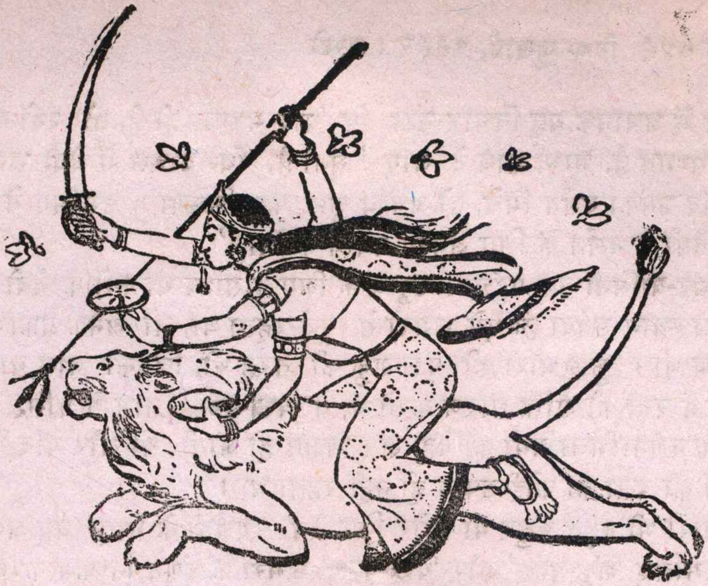

देवी भ्रमर-वासिनी

['दुर्गा-सप्तशती' के ग्यारहवें अध्याय में महा-माया ने अपने अवतारों की सूचना दी है, उनमें से **'भ्रामरी देवी'** सर्व-शेष अवतार हैं। देवी का कहना है कि वे शेष - अवतार के रूप में षष्टि-तम महा-युग में आविर्भूत होंगी। जिस समय अरुण नामक महाऽसुर तीनों लोकों का उत्पीड़न करेगा, उस समय वे जगज्जननी भ्रामरी - रूप से प्रकट होंगी। उनका शरीर असंख्य भ्रमरों से घिरा रहेगा और यही मूर्ति अरुणासुर को बधेगी, तब इनका नाम **'भ्रामरी'** होगा। ये **अतीव तेज - पुञ्ज - कलेवरा, दुर्निरीक्ष्य - देहा** और **विचित्र कान्ति - मती** हैं। इनका **सर्वाङ्ग सुगन्धित अनुलेपन द्वारा विलेपित** और **विचित्र उज्ज्वल भूषणों द्वारा सुशोभित, हस्त-समूह नाना-जातीय भ्रमर-राजि से पूर्ण** होगा। इनका दूसरा नाम **'महा-मारी'** है।

काश्मीर के इतिहास **'राज - तरङ्गिणी'** के रचयिता **कल्हण** ने **भ्रमर - वासिनी देवी** के विषय में एक विचित्र कहानी का अवतरण 'राज - तरङ्गिणी' में दिया है। ऐतिहासिकों ने एक ओर कल्हण - वर्णित इस अलौकिक कथानक को अविश्वास - पूर्ण कहा है, दूसरी ओर इस कथानक की कल्पना-शक्ति की प्रशंसा की है। आस्तिक समाज के लिए यह कथानक आज भी, पौराणिक कथानकों के समान पवित्र एवं विविध रहस्यों से पूर्ण है। आशा है कि 'चण्डी' के पाठक-बन्धु इसे ध्यान से पढ़ेंगे और इसके रहस्यों का मनन कर आनन्दित होंगे।—सं०]

ईसा की तीसरी शताब्दी के प्रारम्भिक काल की बात है। काश्मीर का एक जुआरी, दूसरे धूर्त जुआरियों के द्वारा बुरी तरह प्रताड़ित और लूट लिया गया। बेचारे का सर्वस्व स्वाहा हो गया। इस अवस्था में जीवित रहना वृथा समझकर, वह 'आत्म-हत्या' करने को उद्यत हुआ, किन्तु आत्म-घात

के पहले उसके मन में अचानक यह विचार उठा कि 'यदि मरना ही है, तो क्यों न एक बार कुछ यत्न कर लिया जाए। सम्भव है, भाग्य साथ दे जाए ! सुना है, **विन्ध्याचल में देवी भ्रमर - वासिनी** नियत अधिष्ठिता हैं। यदि उनका दर्शन मिले, तो अवश्य कुछ फल मिलेगा। इसलिए मेरे भाग्य में चाहे जो हो, अपने भरसक देवी के दर्शन के लिए अवश्य प्रयत्न करूँगा।'

देवी भ्रमर-वासिनी तक पहुँचना मनुष्य के लिए दुःसाध्य था क्योंकि देवी-मन्दिर के आस-पास पाँच योजन तक का स्थान सर्वदा ही ऐसे भ्रमरों से पूर्ण रहता था, जो अनेक प्रकार के थे और जिनकी प्रकृति बड़ी भीषण थी। कुछ भौंरों की पूँछ शंकु की तरह थीं, जिनका नाम था **'शंकु-पुच्छ'** और जो भ्रमर अपनी दुमों में वज्र की शक्ति धारण करते थे, वे **'वज्र-पुच्छ'** नाम से प्रसिद्ध थे। इन सब भ्रमरों के काटने से देवी के दर्शनाभिलाषियों की देह क्षत-विक्षत हो जाती थी और यदि ये एक साथ मिलकर डँसते थे, तो प्राणों की रक्षा का कोई उपाय ही नहीं रहता था।

वह जुआरी भी बहुत चतुर था और फिर देवी - दर्शनों के लिए, वह अपने जीवन की बाजी लगा चुका था। इसलिए **'शंकु-पुच्छ'** और **'वज्र-पुच्छ' भ्रमरों** के दंशन निष्फल करने के लिए उसने पहले तो एक लोहे के 'वर्म' (कवच) से अपने को सिर से पैर तक ढक लिया। फिर उसके ऊपर कई पर्त 'भैंसे का चमड़ा' लपेटा। उसके ऊपर कई पर्त 'गोबर का लेप' लगाया। इस प्रकार अपने को सुरक्षित करके वह चल पड़ा। दूर से देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो 'मिट्टी का एक खम्भा' चला जा रहा है।

इस प्रकार के भारी बोझ से लदे हुए चलना कितना क्लेश-दायक था ! जुवारी दो-चार कदम चलने के बाद ही थक जाता था और पसीने से लस्त हो जाता था। फिर भी वह चलता ही गया और अन्त में विन्ध्य-पर्वत की गुहा में प्रविष्ट हुआ। उसका घुसना था कि चारों तरफ से भौंरों ने उसे घेर लिया और गूँजने लगे। उनका गुन्जन-शब्द इतना तीव्र था कि 'वर्म' के भीतर होने पर भी वह वधिर हो रहा था, परन्तु उस चलते हुए वर्मावृत जुवारी का भ्रमर-गण कुछ कर नहीं पाए क्योंकि भौंरे जैसे ही मिट्टी और गोबर को डंश मारते थे, उसमें से धूल निकल कर भौंरों की आँखों में भर जाती थी और वे लौट जाते थे।

इस प्रकार जुवारी आगे बढ़ता गया और भौंरे भी करोड़ों की संख्या में उसके पीछे लगे रहे। भौंरों के एक गिरोह के धूल से अन्धे होकर लौटते-न-लौटते ही, दूसरा झुण्ड उस पर आक्रमण कर देता था। इस प्रकार तीन योजन रास्ता समाप्त होने तक, भौंरों ने 'गोबर के लेप' को साफ कर दिया। इसके बाद चटाचट की आवाज जुवारी को सुनाई पड़ी, जिससे उसे मालूम हो गया कि भौंरों ने मिट्टी साफ कर दी है और अब चमड़े को डँस रहे हैं। चौथे योजन की दूरी पर 'महिष - चर्म' का आवरण भी कट गया। अब भौंरे लौह को काटने लगे, जिससे टनाटन की आवाज होने लगी।

जुवारी समझ गया कि लोहा कटते ही भ्रमर उसको खा जाएँगे, परन्तु वह विचलित नहीं हुआ और अपने भरसक तेजी से भागने लगा। परिश्रम, भय और गुफा के भीतर, स्वच्छ वायु के अभाव से, उसका सारा शरीर पसीने से लस्त हो गया, प्यास से 'प्राण-वायु' छूटनी ही चाहती थी, फिर भी वह दौड़ रहा था। देवी के मन्दिर का मार्ग आधा योजन मात्र रह गया था कि **'वज्र - पुच्छ' भ्रमरों** ने उस **'लौह-वर्म'** को भी बिलकुल काट डाला। तब वह दोनों हाथों से भ्रमरों को हटाते हुए भागने लगा, परन्तु **धीरे-धीरे वे उसका सब मांस खा गए। केवल स्नायु, शिरा और अस्थि मात्र रह गया। समस्त अङ्ग**

रुधिरालुप्त था। ऐसी अवस्था में केवल आँखों को हाथों से बचाकर, देवी के सामने वह उपस्थित हुआ। उस समय सब भौंरे भाग गए।

प्रकाश का अनुभव करके जुवारी ने आँखें खोलते ही सामने मन्दिर में एक **'भीषणाकृति देवी-मूर्ति'** देखी, परन्तु भौंरों के काटने का कष्ट इतना असहनीय था कि उसी समय वह मूर्छित होकर **'देवी के चरणों'** पर गिर पड़ा। जुवारी का शरीर यद्यपि भौंरों के दंशन से क्षत-विक्षत हो गया था, तथापि उसके शरीर में 'प्राण-वायु' अवशिष्ट थी। देवी ने कृपा-पूर्वक अपने अमृत-निस्पन्दी हाथों के स्पर्श - मात्र से उसे **'दिव्य देह'** प्रदान की।

कुछ समय के अनन्तर वह जुआरी कुछ सचेत हुआ और चारों तरफ देखने लगा। 'मन्दिर'-प्रवेश के समय जब वह रुधिराक्त था और जिस भयङ्कर देवी-मूर्ति के सामने मूर्छित होकर गिर पड़ा था, उस मूर्ति को उसने वहाँ नहीं पाया। वह उठकर इधर-उधर घूमने लगा। घूमते - घूमते उसने देखा कि निकट ही उपवन में, एक तालाब के किनारे, लता-गृह में, एक सर्व-सुलक्षणा श्यामा, नलिन-नयना, वर-वर्णिनी एक मूर्ति उपविष्टा है। वह अपूर्व मूर्ति, उसे कोई **विन्ध्य-वासिनी अप्सरा** प्रतीत हुई।

उस लोक-ललाम-भूता दिव्य-ललना ने उससे कहा—हे **सौम्य ! तुमको मार्ग में बहुत कष्ट मिला है। अतः कुछ समय विश्राम करो। इसके बाद अभीष्ट वर की प्रार्थना करना।**

उस जुवारी ने पहले ही से उनको कोई अप्सरा समझ रक्खा था। वह बोला—हे **भद्रे ! आपके दर्शन से ही मेरा कष्ट दूर हो गया है ! किन्तु मैं आपसे पूछता हूँ कि आप तो देवी नहीं हैं, वर-प्रदान करने की शक्ति आप में कहाँ से आई ?**

देवी ने हँसकर उत्तर दिया—**मैं देवी हूँ या नहीं, इससे तुम्हें क्या मतलब ? तुमको तो वर चाहिए न ?**

इस पर जुवारी ने चालाकी से देवी से वचन ले लिया कि उसका काम्य, देवी के 'वर-प्रदान' से सिद्ध हो। देवी ने भी, उसके क्लेश से दया-वश हो, उसे वचन दे दिया।

तब द्यूतकर ने कहा—**हे भद्रे ! आप मुझे पत्नी-भाव से भजन करिए।**

ऐसी बात सुनकर देवी स्तम्भित हुईं और बोलीं—तात, **यह कैसी अयोग्य प्रार्थना है ! मैं स्वयं विष्णु-शक्ति भ्रमर-वासिनी दुर्गा हूँ। इस असम्भव वर को छोड़ कर कोई दूसरा वर माँगो।**

उनको देवी भ्रमर-वासिनी जानकर भी उसने अपनी माँग नहीं बदली और कहा—**देवि ! आप भवानी ही हो अथवा मानवी, मेरी कोई दूसरी प्रार्थना नहीं है। अवश्य आप क्रोधित होकर, इसी क्षण मेरा बध कर सकती हैं, परन्तु उससे मुझे कोई भय नहीं। यदि आप मुझे ईप्सित वरदान न करें, तो आप स्वयं ही सत्य-भङ्ग के पाप से लिप्त होंगी।**

देवी को पश्चात्ताप हुआ। 'अ-पात्र' में दया दिखलाने से ऐसा ही होता है। अन्त में उन्होंने कहा—**'जा, दूसरे जन्म में तेरा अभीष्ट सिद्ध होगा।' यह कह कर अन्तर्हित हुईं।**

द्यूतकर अगले जन्म के लिए साधारण मृत्यु तक ठहर नहीं सका। **'प्रयाग'** में आकर **'अक्षय-वट-वृक्ष'** की शाखा से 'सङ्गम' में कूद कर प्राणों का त्याग किया। दूसरे जन्म में उसी जुवारी ने **काश्मीर के राज - वंश में रणादित्य तुञ्जीन** के रूप से जन्म ग्रहण किया। उसके मस्तक पर एक अपूर्व 'शङ्ख-चिह्न' था।

उसी समय **चोल देश का राजा रतिसेन** भी समुद्र की पूजा करने गया था, जहाँ तरङ्गों के बीच उसे एक परम रूपवती कन्या मिल गई थी। उसका नाम **रणारम्भा** रक्खा गया था। शैशव ही से उस लड़की के मुख से **'दिव्य' वाणी** निकलती थी। इससे रतिसेन को मालूम हो गया था कि उसकी उत्पत्ति किसी देवी के अंश से हुई है। इसी कारण विवाह-योग्या होने पर भी, उन्होंने उसके लिए वर नहीं ढूंढ़ा। बहुत से राजा-महाराजाओं ने उससे विवाह करने के लिए दूत भेजा, परन्तु रतिसेन ने सभी को अस्वीकार कर दिया। रणादित्य के मन्त्री ने भी अपने प्रभु के लिए कन्या को माँगा और रतिसेन प्रत्याख्यान करने ही वाले थे कि रणारम्भा ने बताया कि रणादित्य ही उसका निश्चित भर्त्ता है।

यथा-समय रणादित्य के साथ रणारम्भा का विवाह हो गया। वह रणारम्भा ही **देवी भ्रमर-वासिनी** की मानवी मूर्ति थी। रणादित्य की पत्नी होते हुए भी, उसने इस प्रकार की माया फैलाई कि रणादित्य कभी भी उसे स्पर्श नहीं कर पाया। प्रत्येक रात्रि को वह 'दैवी' - माया से अपने अनुरूप एक रमणी-मूर्ति बनाकर पति के पास भेजती थी और स्वयं 'भ्रामरी'-रूप धारण कर विन्ध्याचल चली जाती थी। प्रातः-काल जब वह लौटती, तब वह नारी-मूर्ति अन्तर्धान हो जाती।

कुछ समय बीतने पर राजा रणादित्य ने 'शिव-प्रतिष्ठा' का उद्योग किया। राज्य में उत्सव इत्यादि होने लगे, परन्तु प्रतिष्ठा के पूर्व-दिन, जब शिल्पी प्रतिष्ठा-योग्य दो शिव-लिङ्ग बनाकर लाया, उस समय सभा-स्थित एक दैवज्ञ ने कहा—**"महाराज, ये दोनों लिङ्ग प्रतिष्ठा-योग्य नहीं हैं। इनके भीतर खोखला है और उसमें कई मेढक हैं।"**

परीक्षा से यह बात सच पाई गई। उस समय दूसरी मूर्ति बनाने के लिए समय नहीं था। राजा को बहुत शोक हुआ कि अब मेरा व्रत भङ्ग हो रहा है। तब महाराणी ने राजा को आशा दिलाते हुए कहा—**"महाराज ! आप शोक न करिए, कल प्रातः-काल प्रतिष्ठा-योग्य मूर्ति मैं मँगवा दूँगी।"**

साथ ही उन्होंने एक बहुत पुरानी कहानी बताई कि हिमाचल-कन्या पार्वती के विवाह-समय, ब्रह्मा ने पौरोहित्य किया था। ब्रह्मा ने जब अपनी नित्य अर्चनीय विष्णु-मूर्ति को पूजन के लिए निकाला, तो महा-देव ने कहा—**"हे पितामह, शिव-पूजा न करके केवल विष्णु की पूजा असिद्ध है क्योंकि हरि और हर परस्पर युग्म देवता हैं। विष्णु-प्रतिमा शक्ति-रूपा और शिव-प्रतिमा चैतन्य - स्वरूपा है। जैसे शिव और शक्ति के सम्मिलित न होने से पूर्ण पूजा का फल लाभ नहीं होता, उसी प्रकार हरि और हर की मिलित पूजा से रहित समस्त अर्चना निष्फल है।"**

तब उस विवाह में देवासुर-प्रदत्त रत्नोपहार से एक विश्व - विख्यात शिव - लिङ्ग का निर्माण हुआ। कुछ दिन बाद उस विष्णु-मूर्ति के साथ उस शिव-लिङ्ग को राजा रावण लङ्का ले गया। रावण-बध के उपरान्त, वानरों ने कौतूहल-वश उन दोनों मूर्तियों को कुछ समय तक इधर - उधर किया तथा बाद में उन युग्म मूर्तियों को उत्तर-मानस-ह्रद में फेंक दिया।

राणी ने आश्वास दिलाते हुए कहा कि उस युग्म मूर्ति को, उन्होंने शिल्पियों की सहायता से निकलवाया है। प्रतिष्ठा के दिन, पूर्वाह्न में ही राज-प्रासाद में मूर्ति पहुँच जायगी। राणी के कहने पर राजा को विश्वास हुआ।

गम्भीर रात्रि में देवी ने गगन - पथचारी सिद्ध - गणों को मूर्ति लाने के लिए आज्ञा दी और उन्होंने मानस-सरोवर से उक्त हरि-हर मूर्तियाँ लाकर प्रासाद में रख दीं। दूसरे दिन सवेरे राज - महल

में, पारिजातादि दिव्य-पुष्प-शोभित अपूर्व हर-हरि-प्रतिमाओं को देखकर सभी विस्मित हुए और राणी रम्भा का 'स्तुति'-गान करने लगे।

राज्य में **'ब्रह्मा'**-नाम का एक सिद्ध, **'देवी'-दर्शन** की लालसा से, **प्रच्छन्न-रूप** से राणी का जल लाने का भार ग्रहण किए हुए था। राणी को यह बात मालूम थी। इस कारण उन्होंने प्रतिष्ठा-कार्य में उसी को प्रधान पुरोहित रूप से वरण किया। 'ब्रह्मा' को भी मालूम हो गया कि देवी से उसका स्वरूप छिपा नहीं है और सानन्द देवी की आज्ञा से आकाश-पथ पर जाकर, वहाँ से उतर कर 'देव-मन्दिर' के निकट आया। उसे आकाश से उतरते देख, जन-मण्डली विस्मय-विमुग्ध हुई।

राजा रणादित्य परम शैव थे। अतएव जैसे ही उन्होंने पहले **'शिव-प्रतिष्ठा'** का उद्योग किया, वैसे ही राणी रणारम्भा के प्रभाव से पीठ को विदीर्ण कर विष्णु-मूर्ति स्वयं ही पीठोपरि आविर्भूत हुई। राणी ने कहा—**'महाराज, विष्णु ही शक्ति-स्वरूप हैं—उन्हीं की प्रतिष्ठा प्रथम कर्तव्य है। शिव-प्रतिष्ठा पीछे करिएगा।'** अनन्तर बड़ी धूम-धाम से वहाँ **रण-स्वामी विष्णु और रणेश्वर महा - देव** की प्रतिष्ठा **सु-सम्पन्न** हुई।

देवी की कृपा से राणा को तीन सौ वर्ष की आयु और **'हाटकेश्वर मन्त्र'** की सिद्धि प्राप्त हुई थी। इसी के फल-स्वरूप इष्टिका-पथ और नन्द-शिला स्थानों में, साधना करके महाराजा रणादित्य पाताल के अधिपति हुए थे। चन्द्रभागा नदी के जल-मध्य में, नमुचि-दानव निर्मित पाताल-प्रवेश-विवर द्वार से वे पाताल गए थे। वह द्वार २१ दिन तक खुला था। उस द्वार से केवल राजा ही नहीं, उनके प्रजा-वर्ग ने भी पाताल में जाकर नाना प्रकार के अलौकिक आनन्दों का लाभ किया था, ऐसी प्रसिद्धि है। नरपति के प्रजा-पुञ्ज सहित पाताल-प्रवेश के बाद, **विष्णु-शक्ति-स्वरूपा भ्रमर-वासिनी की अवतार-भूता महिषी रणारम्भा श्वेत द्वीप को चली गईं।**

'चण्डी' मासिक पत्रिका की आजीवन सदस्यता

'चण्डी' मासिक पत्रिका का प्रकाशन पिछले ५० वर्षों से प्रति-मास अधिक-से-अधिक उपयोगी रूप में हो रहा है। **'प्रकाशन - कार्य' की सुविधा** की दृष्टि से, **'चण्डी'** मासिक पत्रिका की **'आजीवन सदस्यता'** की योजना बनाई गई है। सम्पन्न पाठक बन्धुओं से निवेदन है कि—

(१) पाँच सौ पचास रु० (५५०-०० रु०) **बैङ्क ड्राफ्ट, मनीआर्डर, पोस्टल आर्डर** द्वारा भेजकर **'चण्डी' के आजीवन सदस्य** बनने की कृपा करें।

बैङ्क ड्राफ्ट 'कौल-कल्पतरु' चण्डी, इलाहाबाद के नाम तथा पोस्टल आर्डर—**ऋतशील शर्मा, चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद** के नाम बनवाने की कृपा करें।

(२) यदि ५५०-०० रु० एक साथ भेजना सम्भव न हो, तो दो या तीन किश्तों में सदस्यता धन-राशि भेजने की कृपा करें।

'चण्डी' के **'आजीवन-सदस्य'** को **'चण्डी'** जीवन-पर्यन्त, जब तक **'चण्डी'** प्रकाशित होती रहेगी, प्रति-वर्ष भेजी जाएगी।

विशेष—'चण्डी' की विशेषाङ्क-योजना के अन्तर्गत वर्ष में चार-पाँच विशेषाङ्क प्रकाशित होते हैं। वे विशेषाङ्क **'आजीवन सदस्य' को रियायती मूल्य की वी० पी० द्वारा भेजे जाएँगे।**

'कवच' के चमत्कार

* 'धर्म-रञ्जन' डा० निमाईचन्द्र घोष

(१)

एक बार मेरा तृतीय कुमार ज्वराक्रान्त हो गया। मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार इलाज किया। उससे लाभ न देखकर अपने डाक्टर मित्रों को, जिनमें स्थानीय सिविल सर्जन भी थे—दिखाया। सर्व-सम्मति से औषधि - योजना की; परन्तु वही बात हुई कि,—**'मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों - ज्यों दवा की।'** बच्चे से सब निराश हो गए, उसके बचने की किसी को आशा न रही। **'डूबते को तिनके का सहारा'** के अनुसार सोचा गया कि कुछ **'दैवी उपाय'** किया जाय।

घर में हमारे एक हितैषी गुरु - जन रहते थे। उन्होंने विचार कर रोगी के सिरहाने बैठकर **'शिव-कवच' का पाठ** करना आरम्भ किया। रोगी, जो अपने आप करवट भी नहीं बदल सकता था, **मन्त्र-जल और विभूति** के शरीर में लगाते ही उठकर बैठ गया और धीरे-धीरे आरोग्य लाभ करता हुआ ४-५ दिन में ही रोग-मुक्त हो गया। यह **'मृत्युञ्जय के कवच'** की महिमा है।

(२)

मेरे बड़े अफसर पधारे थे। उन्हें स्टेशन से लेकर सरकिट हाउस जा रहा था। इधर घर में वे ही वृद्ध गुरु-जन सन्ध्या के लगभग ४ बजे घबड़ाते हुए अपनी सौ० बिटिया (मेरी धर्म - पत्नी) के पास दौड़े आए और बोले—'बच्चा' (मैं) सङ्कट में पड़ गया है या पड़नेवाला है। तुम **दक्षिणा काली का ध्यान कर काली-कवच का पाठ** तब तक करती रहो, जब तक 'बच्चा' (मैं) घर न लौट आए। तदनुसार उनकी बिटिया (मेरी धर्म-पत्नी) **'काली-कवच' का पाठ** करने बैठ गई और स्वयं वे **'चण्डी-कवच' का पाठ** करने लगे।

उनकी घबड़ाहट ठीक थी। रास्ते में एक मोड़ पर ठीक उसी समय (लगभग ४ बजे) हमारी मोटर ज्यों ही मुड़ी, त्यों ही अचानक दूसरी एक मोटर सामने आ गई और दोनों में खासी टक्कर हो गई। आमने - सामने दोनों इञ्जन टकराकर पीछे के पहियों पर खड़े हो गए। हमारे प्राण सूख गए, परन्तु किसी के शरीर में खरोंच तक नहीं आई। सब बाल-बाल बच गए! घर आकर जाना कि यह **'कवच का प्रताप'** था।

(३)

मेरे दोनों छोटे बच्चे गोरखपुर बहन के घर छुट्टियों में मिलने गए थे। छोटा वहाँ ज्वराक्रान्त हो गया। उसे उसी अवस्था में छोड़कर बड़ा तो लौट आया, परन्तु छोटे का समाचार नहीं मिल रहा था। सब चिन्तित थे। जवाबी तार का भी उत्तर नहीं! चिन्तातुर गुरु जी दूसरे दिन आसन जमा कर **बैठ गए 'चण्डी-कवच' का पाठ** करने। पाँच आवर्तन भी पूरे न हो पाए थे कि तार से समाचार मिला—'ज्वर घट गया है, चिन्ता न करें।' गुरु जी की प्रतिज्ञा थी कि जब तक बच्चे का शुभ समाचार नहीं मिलेगा, उठूँगा नहीं। **'कवच' ने अपना प्रताप दिखा दिया।**

(४)

प्रारब्ध-कर्मानुसार बाल - बच्चेवाले एक रेलवे अफसर का मस्तिष्क एकाएक विकृत हो गया। अपनी युवती स्त्री को और छोटे-छोटे बच्चों को मारता-पीटता, नङ्गा घूमता, वेतन और घर का गहना-गूठा गङ्गा जी में फेंक आता तथा पुराने परिचित मित्रों को भी नहीं पहचानता था। उसकी हरकतों से सब बड़े परेशान थे। दफ्तर जाना बन्द कर दिया और खेती-गृहस्थी को भी भूल गया।

उसके असिस्टेण्ट को—जो हमारा बन्धु था—उस पर और उसके परिवार पर बड़ी दया आई। वह उसे हमारे पास ले आया और उसका इलाज करने के लिए हमसे अनुरोध करने लगा। रेलवे डाक्टर ने पागलपन का इलाज किया था, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। तब मैंने और गुरु-देव ने माँ चण्डी की शरण ली। हम लोग **'चण्डी-कवच'** पढ़ने लगे, जिससे उसकी बुद्धि ठिकाने आने लगी। थोड़े ही दिनों में जब उसे अपनी सुध हुई, तब गुरु-देव ने उसे **'चण्डी-कवच'** बता दिया और प्रति-दिन नियमित रूप से उसका पाठ करने की आज्ञा दी। वह पाठ करने लगा और धीरे-धीरे मनुष्यत्व में आ गया। दफ्तर जाने लगा और परिवार को प्रेम से सम्हालने लगा। उसकी पद-वृद्धि हुई। यह सब **चण्डी - कवच का ही माहात्म्य है।**

(५)

हमारे एक मित्र एक बड़ी मिल में पदाधिकारी हैं। आजकल मजूर-मालिकों का सङ्घर्ष चलता ही रहता है और अफसरों को मालिकों का पक्ष ग्रहण करना पड़ता है। उनके मातहत मजदूरों ने उनसे चिढ़कर निश्चय किया कि उनको जान से मार डाला जाए। 'प्राण' सबको प्रिय होते हैं। वे घबड़ा कर, गुरु-देव के पास आकर अपनी 'प्राण-रक्षा' का उपाय पूछने लगे। गुरु-देव ने **'चण्डी - कवच'** बताकर उसका नियमित प्रति-दिन पाठ करने को कहा। मित्र महाशय श्रद्धा-भक्ति से **'चण्डी-कवच' का पाठ** करने लगे। चमत्कार यह हुआ कि सम्पूर्ण विरोध शमन हो गया और स्वयं शत्रु शरणागत होकर कहने लगे कि—'साहब ! हमने आपको मार डालने का निश्चय किया था, परन्तु जब-जब तैयार होकर हम मारने को उद्यत होते, तब जान पड़ता था कि हमारी लाठी और गँड़ासा कोई रोक रहा है। किसी को आपकी हत्या करने का साहस नहीं हुआ और मन में यही होता कि अपने दुष्ट विचार हम निष्कपट भाव से आपसे कह दें। आप हमें क्षमा करें।' शत्रुओं की बातें सुनकर मित्र महाशय ने माँ के चरणों में सिर नवाया और शत्रुओं को अभय-दान किया। यह है **'कवच का चमत्कार'**।

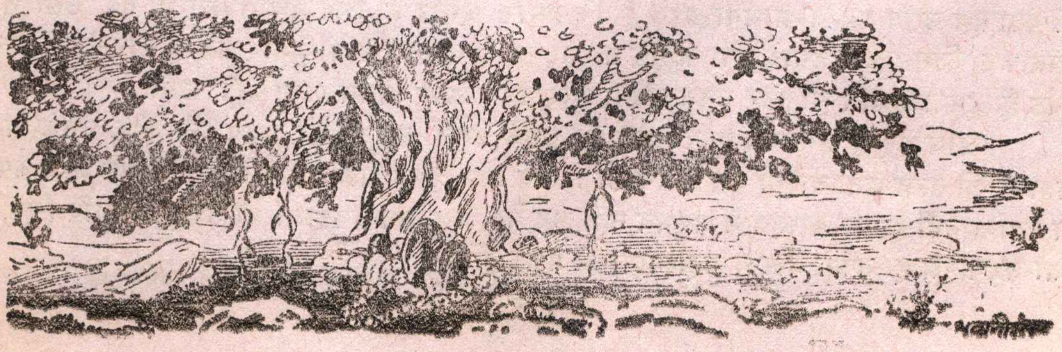

रहस्योद्घाटन

* श्री मातृ-चरणों का मधु-व्रत

माँ ने वचन दिया है—**'वरदाऽहम्'** ! मैं वरदान देने को तैयार बैठी हूँ, **'माँगो, जो माँगना हो ।'** और **'जब-जब दानवों का उपद्रव होगा, तब-तब मैं अवतार लेकर शत्रुओं का नाश करूँगी !'**

भक्त-गण प्रति-वर्ष इस 'वचन' का स्मरण कर, टकटकी बाँधे उसके इन वाक्यों की पूर्ति की प्रतीक्षा की आशा हृदय में रखे जी रहे हैं। तो क्या, वह आती नहीं है ? क्या उसका वरदान पूरा होने-वाला नहीं है ? क्या उसकी वाणी आश्वासन मात्र है ?

नहीं, वह आती है और अपने वाक्य को पूरा करती ही रहती है। कसर हमारी ओर से होती है, जिससे दिव्यता का साम्राज्य इस धरातल पर स्थापित नहीं हो पाता।

वह नित्य ही तो **शाकम्भरी-रूप** से इस विश्व का परिपालन कर रही है, यह हम नहीं देखते ? कितने-कितने सङ्कट इस पृथ्वी पर स्वयं मनुष्य-कृत उत्पन्न होते हैं, उनसे कौन मानवता का त्राण करता है ? अन्य सङ्कटों की बात क्या ! व्यक्ति-गत जीवन में या समूह-गत जीवन में क्या उसके अभय-वरद कर-पल्लवों का अनुभव पग-पग पर होता नहीं रहता ?

परन्तु मनुष्य क्या अपनी ओर से अपना कर्तव्य करता है ? देवताओं ने वर माँगा था—**'इसी प्रकार हमारे वैरियों का नाश किया करना।'** हम भी वही माँग उससे करते हैं और चाहते हैं कि हमारे शत्रुओं का नाश हो जाए। पर आज तो मनुष्य ही मनुष्य का सबसे बड़ा और प्रवल शत्रु है ! तो विश्वम्भरी माँ, किस शत्रु का नाश करे ? अपने किस मानव शिशु का नाश करे और किसका त्राण करे !

यही नहीं, हम बाहर के शत्रुओं का दमन चाहते हैं और अपने अन्तर में रिपुओं को आश्रय देते हैं, तो विश्वम्भरी क्या करे ? देवताओं ने अपनी-अपनी शक्तियों (अस्त्र-शस्त्रों) को देवी के हाथों में दे डाला, जिससे वह उनका उनके शत्रुओं के संहार में उपयोग करे। उनकी प्रत्यक्ष शक्तियाँ भी महा-माया के पक्ष में शुम्भ-निशुम्भ से लड़ने के लिए आ खड़ी हुई थीं।

क्या इसी प्रकार, हम अपनी सारी शक्ति भगवती शक्ति के पक्ष में लगा देने को तैयार होते हैं ? क्या हम उससे यह भी प्रार्थना करते हैं कि हमारे अन्तर में छिपे शत्रुओं का भी वह उसी तरह संहार करे, जिस प्रकार हमारे तथा-कथित शत्रुओं का ? वास्तव में जो हमारे शत्रु हैं और हमारे अन्तर में बैठे हैं, हम उन्हें शत्रु मानकर उनसे लड़ना और उनके ऊपर विजय पाना नहीं चाहते।

आज मनुष्य के सामने मुख्य प्रश्न है, अपने असल शत्रुओं को पहचानने और उनके विरुद्ध देवताओं की तरह शताब्दों का युद्ध ठानने का। जब तक हम पराक्रम भर लड़ नहीं लेते और अपना बल पर्याप्त नहीं है, यह वास्तव में अनुभव नहीं कर लेते, तब तक देवताओं की तरह शिवादि (गुरु) के न तो शरणापन्न हो सकेंगे और न महा-माया ही प्रकट होंगी।

साधन-माला

[ज्येष्ठ-अङ्क (जून, ९२) से आगे]

(४०)

ऋण-हर धन-प्रद मंगल-स्तोत्र

सौर मण्डल के नव ग्रहों में 'मङ्गल' सर्वाधिक क्रूर ग्रह है। इसके अनुकूल न होने पर व्यक्ति को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ये कठिनाइयाँ अकारण, अकल्पित और आकस्मिक होती हैं। रोग हो सकता है। धन की हानि हो सकती है। ऋण हो सकता है। दुर्घटना हो सकती है। चोट लग सकती है। अगच्छेद (आपरेशन) हो सकता है। मन की दूरी, तनाव, वैमनस्य और सम्बन्ध-विच्छेद हो सकता है।

'मङ्गल ग्रह' की उपासना से ऊपर के दोषों को दूर करने और शान्ति - लाभ करने में सहायता मिलती है। इसकी उपासना का तन्त्रों में एक **प्राचीन सिद्ध स्तोत्र है। इस स्तोत्र का पाठ प्रातः उठते ही शैया पर कर लिया जाता है।** अतः इस उपासना के करने में कोई विशेष नियम या कठिनाई नहीं है। स्तोत्र छोटा है, किन्तु अत्यन्त प्रभावकारी और अनुभूत है। इसका पाठ करने में कठिनाई से दस मिनट लगते हैं।

'मङ्गल-स्तोत्र' पर आधारित **'मङ्गल ग्रह'** का **'यन्त्र'** भी होता है। यह 'यन्त्र', ताँबे का बना होता है। ताँबा **'मङ्गल ग्रह'** की धातु है। 'यन्त्र', **'त्रिकोणाकार'** होता **है—एक बड़े त्रिकोण के भीतर छोटे, सम आकार के सात त्रिकोण होते हैं, जिनमें मङ्गल के इक्कीस नाम 'प्रणव' (ॐ) और 'नमः' के साथ लिखे होते हैं।** इन इक्कीस नामों के आदि में 'प्रणव' (ॐ) और अन्त में **'नमः'** लगाकर—**'ॐ मङ्गलाय नमः', 'ॐ भूमिपुत्राय नमः'**—आदि से रक्त-चन्दन और शीतल जल द्वारा प्रत्येक नाम से इस 'यन्त्र' का अभिषेक किया जाता है। यही 'यन्त्र' के पूजन की विधि है। १ गन्ध, २ पुष्प, ३ धूप, ४ दीप व ५ नैवेद्य आदि पञ्चोपचार इसके साथ होने ही हैं। 'पुष्प' लाल होने चाहिए।

ताँबे का कड़ा हाथ में पहनना, ताँबे के पात्र में रखे हुए जल का पान करना, या मूँगा-रत्न धारण करना भी 'मङ्गल' की शान्ति के दूसरे उपाय हैं, जो अनुभव से प्रभाव-

कारी सिद्ध हुए हैं। स्तोत्र के सम्बन्ध में हमारा अपना अनुभव है कि **'मङ्गल ग्रह'** की बाधा से ग्रस्त जिस किसी व्यक्ति को इसे हमने दिया है, उसका सदैव कल्याण हुआ है।

'मङ्गल' की शान्ति के लिए बहुत से लोग **मङ्गल-वार का व्रत** भी रखते हैं। इस व्रत में **'नमक'** नहीं खाया जाता। दिन में 'सन्ध्या'-काल में केवल **एक बार** ही **भोजन** किया जाता है।

'मङ्गल-स्तोत्र' के पाठ में पहले उसका **'विनियोग'** पढ़ा जाता है। **'विनियोग'** को स्तोत्र का सन्दर्भ समझिए, जिसमें उसके रचयिता और सिद्धि-प्राप्त-कर्त्ता ऋषि का नाम, छन्द, देवता और पाठ करने का उद्देश्य या प्रयोजन सूचित किया जाता है।

'विनियोग' के बाद **'ऋष्यादि-न्यास'** कर मङ्गल देवता के स्वरूप का ध्यान किया जाता है। **रक्ताम्बर धारण किए, रक्त-वर्ण शरीरवाले, शिर पर रत्न-जटित मुकुट, मेष अर्थात् मेढ़े पर सवार, चार भुजाएँ, जिनमें क्रमशः—१ गदा, २ शक्ति, ३ त्रिशूल और ४ वर** की मुद्रा है। ऐसा स्वरूप है **'मंगल ग्रह'** के अधिष्ठातृ देवता का।

यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने की है। **मंगल ग्रह और 'अग्नि'** के **स्वरूप** तथा स्वभाव में बहुत समानता है। वही रक्ताम्बर, वही प्रज्वलित देह, मेष का वाहन और शक्ति का आयुध—**'अग्नि'** का भी है। **'शक्ति'** ऊर्जा अर्थात् 'एनर्जी' को कहते हैं और 'एनर्जी' **'अग्नि'** का ही दूसरा नाम है। अतः इसमें सन्देह नहीं कि **मंगल और अग्नि दोनों में प्रकृति का साम्य है, अभिन्नता है, तादात्म्य है।**

'लाल रंग' में भी अपनी विशेषता है। लाल रङ्ग ऊष्मा का द्योतक है, 'ऊष्मा' प्रदान भी करता है। अतः 'लाल-रङ्ग' रक्त या चर्म रोगों के लिए लाभ - दायक सिद्ध होता है। जन्म-जात उदासीनों को और परिवेश द्वारा पीड़ित निराशा-वादियों को 'लाल रङ्ग' मानसिक शक्ति तथा साहस प्रदान करता है। जिन महिलाओं और पुरुषों का **'मंगल'** बली होता है, उन्हें स्वभाव से लाल रङ्ग प्रिय होता है। लाल कपड़े, लाल बिस्तर, लाल रङ्ग से पुता कमरा। बस, कुछ पूछिए नहीं। मङ्गल की आराधना में लाल रङ्ग के कपड़े और लाल रङ्ग के पुष्प, नैवेद्य आदि उपचार विशेष रूप में सहायक सिद्ध होते हैं।

मङ्गल के **'ध्यान'** के पश्चात् **'मानस - पूजा'** कर **'मंगल - स्तोत्र' का पाठ** किया जाता है। इस स्तोत्र में **'मंगल'** के अर्थ-गर्भित इक्कीस नामों का उल्लेख है। साधक को

इन नामों का **अर्थ-बोध** होना चाहिए। स्तोत्र के पाठ का तभी वास्तविक लाभ होता है। तोते की तरह पढ़ लेने से नहीं। 'स्तोत्र' के अन्त में ५ श्लोक **'पुष्पाञ्जलि'** अर्थात् **मंगल देवता को नमस्कार** के हैं। इन श्लोकों को पढ़कर **'मंगल'** देवता को लाल पुष्पों की अञ्जलि अर्पित करनी चाहिए।

'मंगल - स्तोत्र' जानने के पूर्व यहाँ **'मंगल'** की उत्पत्ति की कथा का उल्लेख आवश्यक है। यह कथा 'शिव-पुराण' की रुद्र-संहिता में आई है, जो इस प्रकार है—"दक्ष के यज्ञ में जब सती ने आत्म-दाह कर लिया, तो भगवान् शङ्कर शोकाकुल होकर कैलास पर्वत पर आ गए और समाधि लगाकर बैठ गए। असख्य वर्ष व्यतीत हो गए, तब उनकी समाधि खुली। उस समय भगवान् शिव के ललाट से पसीने की एक बूँद पृथ्वी पर गिरी। वह बूँद तत्काल एक नव-जात शिशु के रूप में बदल गई। उस बालक के चार भुजाएँ थीं। शरीर का रङ्ग लाल था और आकृति मनोहर थी। दिव्य द्युति से युक्त वह शोभा - शाली बालक अत्यन्त दुस्सह तेज से सम्पन्न था। तथापि उस समय भगवान् शिव के आगे वह साधारण शिशु की भाँति रोने लगा। तभी वहाँ पृथ्वी सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके प्रकट हो गईं। उन्होंने उस बालक को अपनी गोद में ले लिया और उसे अपना स्तन-पान कराने लगीं। उन्होंने स्नेह से उसका मुख चूमा और अपना बालक मानकर हँस-हँसकर उसे खिलाने लगीं।

प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर बोले—हे पृथ्वी, तुम धन्य हो। तुम मेरे इस पुत्र का पालन करो। यह मेरे पसीने की बूँद से उत्पन्न हुआ है। तथापि इसकी ख्याति तुम्हारे पुत्र के रूप में होगी। यह अत्यन्त बली, गुणवान्, धन और भूमि का देने-वाला होगा।

किञ्चित् अन्तर से यही कथा 'मत्स्य-पुराण में भी दी हुई है। इसमें लिखा है कि दक्ष-यज्ञ का ध्वंस करने के लिए वीरभद्र (**मंगल**) की उत्पत्ति शिव के स्वेद-विन्दु से हुई थी। वीरभद्र ही पुनः भूमि से **'मंगल'** के रूप में उत्पन्न हुए। **'मंगल'** की पूजा से प्रह्लाद के पुत्र विरोचन को रूप, सौन्दर्य और सौभाग्य की प्राप्ति हुई थी।

अस्तु, धन से पीड़ित और ऋण से ग्रस्त स्त्री - पुरुषों को **'मंगल'** का व्रत और स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। उन युवती स्त्रियों को भी यह पूजा करनी चाहिए, जिनका दाम्पत्य-जीवन दुःखी हो, उसमें दरार पड़ रही हो और एक दूसरे से दूर होने

की चिन्ता दिनों दिन बढ़ती जा रही हो। यह ज्ञात होना चाहिए कि 'मङ्गल. का अर्थ ही सुख है, सौभाग्य है और कल्याण है, पर इस पूजा की सम्यक् जानकारी अपने गुरु या किसी विज्ञ पुरुष से कर लेनी चाहिए। उससे राह सुगम हो जाती है और सफलता में विश्वास हो जाता है। कोरो पुस्तक देखकर या लेख पढ़कर करने लगना अनुचित और संशय-कारक होता है। त्रुटि की भी सम्भावना होती है।

ऋण-हर धन-प्रद 'मंगल-स्तोत्र'

१. विनियोग—ॐ अस्य भौम-स्तोत्रस्य श्रीगर्ग ऋषिः। त्रिष्टुप् छन्दः। मङ्गलो देवता। ऋण-हरणे धन-प्राप्त्यर्थे च विनियोगः।

२. ऋष्यादि-न्यास——श्रीगर्ग - ऋषये नमः शिरसि। त्रिष्टुप् - छन्दसे नमः मुखे। मङ्गल-देवतायै नमः हृदि। ऋण-हरणे धन-प्राप्त्यर्थे च विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

३. ध्यान—— रक्ताम्बरो रक्त-वपुः किरीटी, चतुर्भुजो मेष-गदो गदा-भृत्।
धरा-सुतः शक्ति-धरश्च शूली, सदा मम स्याद् वरदः प्रशान्तः॥

३. स्तोत्र——
ॐ मङ्गलो भूमि - पुत्रश्च, ऋण - हर्त्ता धन-प्रदः।
स्थिरात्मजो महा - कायः, सर्व-कामार्थ - साधकः॥१

लोहितो लोहिताङ्गश्च, सामगानां कृपा - करः।
धरात्मजः कुजो भौमो, भूमिदो भूमि - नन्दनः॥२

अङ्गारको यमश्चैव, सर्व - रोगापहारकः।
वृष्टि-कर्त्ताऽपहर्त्ता च, सर्व - काम - फल - प्रदः॥३

॥ फल-श्रुति ॥

एतानि कुज - नामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
ऋणं न जायते तस्य, धनं प्राप्नोति असंशयः॥४

अङ्गारकोऽति बलवानपि यो ग्रहाणां, स्वेदोद्भवः त्रि-नयनस्य पिनाक-पाणेः।
आरक्त-चन्दन-सुशीतल-वारिणा यः। अभ्यर्चितोऽथ विपुलां प्रददाति सिद्धिम्॥

४. पुष्पाञ्जलि के श्लोक——

ॐ धरणी-गर्भ-सम्भूतं, विद्युत्-कान्ति-सम-प्रभम्।
कुमारं शक्ति - हस्तं तं, मङ्गलं प्रणमाम्यहम्॥१

ऋण - हर्त्रे नमस्तुभ्यं, दुःख - दारिद्र्य - नाशिने ।
नभसि द्योतमानाय, सर्व - कल्याण - कारिणे ।।२
देव - दानव - गन्धर्व - यक्ष - राक्षस - पन्नगाः ।
सुखं यान्ति यतस्तस्मै, नमः धरणि - सूनवे ।।३
यो वक्र - गतिमापन्नो, नृणां दुःखं प्रयच्छति ।
पूजितः सुख - सौभाग्यं, तस्मै क्ष्मा - सूनवे नमः ।।४
प्रसादं कुरु मे नाथ ! मङ्गल - प्रद मङ्गल !
मेष - वाहन, रुद्रात्मन् ! सुखं देहि धनं यशः ।।५

५. अभिषेक के २१ मन्त्र—१ ॐ मङ्गलाय नमः । २ ॐ भूमि-पुत्राय नमः । ३ ॐ ऋण-हर्त्रे नमः । ४ ॐ धन-प्रदाय नमः । ५ ॐ स्थिरात्मजाय नमः । ६ ॐ महा-कायाय नमः । ७ ॐ सर्व - कामार्थ - साधकाय नमः । ८ ॐ लोहिताङ्गाय नमः । ९ ॐ लोहिताक्षाय नमः । १० ॐ सामगानां कृपा - कराय नमः । ११ ॐ धरात्मजाय नमः । १२ ॐ कुजाय नमः । १३ ॐ भौमाय नमः । १४ ॐ भूमिदाय नमः । १५ ॐ भूमि-नन्दनाय नमः । १६ ॐ अङ्गारकाय नमः । १७ ॐ यमाय नमः । १८ ॐ सर्व-रोगाप-हारकाय नमः । १९ ॐ वृष्टि-कर्त्रे नमः । २० ॐ वृष्टयपहर्त्रे नमः । २१ ॐ सर्व-काम-फल-प्रदाय नमः । —'कुल-शेखर' श्रीमहेश चन्द्र गर्ग, प्रयाग

(४१)

ग्रह आदि बाधा, रोग-निवारक प्रयोग

सङ्कल्प—ॐ अद्यैतस्य……अमुक-मासे अमुक-पक्षे अमुक-वासरे अमुक - गोत्रोत्पन्नो अमुक-शर्माऽहं (वर्माहं, गुप्तोऽहं वा) मम स्व-शरीरस्य (मम अमुक-यजमानस्य शरीरस्य वा) सम्पूर्ण-रोग-समूह-वात्तिक-पैत्तिक-श्लैष्मिक-द्वन्द्वज-नाना-दुष्ट-रोगा-जन्मज - पातकज - नाना-ग्रहोपग्रह-प्रयोग-ग्रह-प्रवेश-ग्रह-प्रयोग-ग्रहादि-शान्त्यर्थे सर्व-ग्रहोच्चाटनार्थे श्रीबगलामुखी-देवता-मन्त्रस्य अयुत-जप-तद्-दशांश-होम-तर्पण-मार्जनाय सङ्कल्पमहं करिष्ये ।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीबगलामुखी-मन्त्रस्य नारद-ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । बगला-मुखी देवता । ह्लीं बीजं । स्वाहा शक्तिः । मम शरीरे (यजमानस्य शरीरे वा) नाना-ग्रहो-पग्रह-प्रयोग-ग्रह-प्रवेश-ग्रह-प्रयोग-सम्पूर्ण-रोग-समूह-वात्तिक - पैत्तिक - श्लैष्मिक - द्वन्द्वजादि-

नाना-दुष्ट-रोग-जन्मज-पातकजादि-शान्त्यर्थे सर्व-दुष्ट-बाधा-कष्ट-कारक-ग्रहस्य उच्चाटनार्थे शीघ्रारोग्य-लाभार्थे एवं मम अन्य-अभीष्ट-कार्य-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—नारद-ऋषये नमः शिरसि । त्रिष्टुप् छन्दसे नमः मुखे । बगलामुखी-देवतायै नमः हृदि । ह्लीं बीजाय नमः गुह्ये । स्वाहा-शक्तये नमः पादयोः । अभीष्ट-कार्य-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

अङ्ग-न्यास	**कर-न्यास**	**षडङ्ग-न्यास**
ॐ ह्लीं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
बगलामुखि	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
सर्व-दुष्टानां	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
वाचं मुखं स्तम्भय	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
जिह्वां कीलय कीलय	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
बुद्धि नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा	करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यान—हाथ में पीले फूल, पीले अक्षत और जल लेकर 'ध्यान' करे—

मध्ये सुधाब्धि-मणि-मण्डप-रत्न-वेद्यां, सिंहासनोपरि - गतां परिपीत - वर्णाम् ।
पीताम्बराभरण-माल्य-विभूषितांगीं, देवीं स्मरामि धृत-मुद्गर-वैरि-जिह्वाम् ।।
जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं, वामेन शत्रून् परि - पीडयन्तीम् ।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन, पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि ।।

पूजा-विधि—उपर्युक्त 'ध्यान' करके चित्र के सामने या किसी पीतल के पात्र में हाथ का अक्षत-फूल रखकर निम्न प्रकार पूजन करे—**श्री बगलामुखी-देव्यै नमः आवाहनं समर्पयामि, ध्यानं सम०, आसनं सम०, पाद्यं सम०, अर्घ्यं सम०, आचमनीयं सम०, अक्षतान् सम०, पुष्पं सम०, धूपं आघ्रापयामि, दीपं दर्शयामि, नैवेद्यं निवेदयामि, नैवेद्यान्ते पानीयं समर्पयामि ।**

जप हेतु मन्त्र—१ ॐ ह्लीं बगलामुखि ! सर्व-दुष्टानां वाचं मुखं अमुक-देह-स्थित-नाना-रोगान् आश्रित-आवाहित-सर्व-दुष्ट-प्रयोग-प्रतिबन्धक-ग्रहान् फट् उच्चाटनं कुरु - कुरु स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धि नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा ।

२ ॐ ह्लीं बगलामुखि ! सर्व-दुष्टानां वाचं मुखं अमुक - देह - स्थिर ज्वर (वातज/पित्तज/कफज/त्रिदोषज) दुष्ट-प्रतिबन्ध-ग्रहान् फट् उच्चाटनं कुरु कुरु स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धि नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा ।

३ ॐ ह्लीं बगलामुखि ! सर्व-दुष्टानां बाचं मुखं अमुक-देह-स्थित-ज्वर [वातादि] पर-प्रयोगादि-सर्व-दुष्ट-प्रयोग-ग्रहान् फट् उच्चाटनं कुरु कुरु स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धि नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा ।

तीनों में से किसी एक 'मन्त्र' का दस हजार जप करे । जप का दशांश **'हवन'—घी, शहद, चीनी, दूब, गुरुच, धान के लावा, कुम्हार के चाक की मिट्टी, चार - चार अंगुल के रेंड-काष्ठ के टुकड़े, गीध व कौवे के पङ्ख, पीली सरसों का तेल**——सब मिलाकर उससे **बैर की लकड़ी की अग्नि** में करे । 'हवन' के बाद उसका दशांश **'तर्पण'**, फिर उसका दशांश **'मार्जन'** क्रमशः **'श्रीबगलामुख्यै देव्यै नमः तर्पयामि, मार्जयामि'** मन्त्रों से करे । इसके बाद **सात या नौ कुमारी कन्याओं तथा एक वटुक** [आठ वर्ष के बालक] **का पूजन** कर उन्हें भोजन कराएँ । भोजनोपरान्त यथा-शक्ति 'दक्षिणा' देकर पैर छूकर उन्हें प्रणाम करे और उन सबके हाथ से अपनी पीठ और सिर पर आशीर्वाद - स्वरूप थपकी ले । भोजन में केला और बेसन का लड्डू रहे, अन्य कोई सामग्री नहीं ।

एक से चार तक आवृत्ति करने से कठिन-से-कठिन रोगों से छुटकारा प्राप्त होगा । 'सङ्कल्प' में यथा-स्थान 'रोग' या 'बाधा' का नामोल्लेख कर दे । यथा-सम्भव एक बार के प्रयोग में एक ही मुख्य 'रोग' या 'बाधा' के निवारण हेतु 'सङ्कल्प' करे ।

असाध्य रोगों से छुटकारा पाने के लिए भगवान् कृष्ण का यथा - शक्ति पूजन करके, गीता के ९ वें से १८ वें अध्याय तक, फिर १ से ८ वें अध्याय तक पाठ करें, रोग से पूर्ण छुटकारा पाने तक । नित्य १ पाठ होना चाहिए । सभी ओर से निराश रोगियों के लिए यह प्रयोग 'राम-बाण' जैसा प्रभावकारी है ।

—पं० कपिलनारायण मिश्र, ग्रा० पथार, पो० गड़हनी, जि० आरा (बिहार)

(४२)

शत्रु-बाधा निवारक 'दारुण-सप्तक'

पङ्केश्वर महा-देव का मन्दिर त्रिवेणी सङ्गम पर है । यह त्रिवेणी सङ्गम 'प्रयाग-राज' का त्रिवेणी सङ्गम नहीं है अपितु गुजरात का **हरिणाक्षी, भिमाक्षी** और **कौशुम्भी नदियों का सङ्गम है** । मन्दिर बहुत बिशाल नहीं है, मन्दिर के चारों ओर परिक्रमा वनो

हुई है। पक्षेश्वर महा-देव **शरभेश्वर महा-देव, पक्षि-राज हैं। शरभेश्वर, पक्षि-राज आदि** इन्हीं के नाम हैं।

इनकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—जब हिरण्यकश्यप को भगवान् नृसिंह ने अपनी गोद में रख कर अपने खर-तर नखों से उसके उदर को सर्वथा विदीर्ण कर चीर दिया और प्रह्लाद का दुःख दूर हो गया। तदनन्तर श्री भगवान् नृसिंह का वह क्रोध शान्त न हुआ, तब भगवान् विष्णु के आग्रह से भगवान् रुद्र ने श्री शरभेश्वर (पक्षि-राज, पक्षीन्द्र, पक्षेश्वर) का रूप धारण कर, अपनी लौह के समान कठिन त्रोटी (चोंच) से, नृसिंह देव के ब्रह्म-रन्ध्र को विदीर्ण कर दिया, जिससे वे पुनः शान्त हो गए।

भगवान् रुद्रावतार महा-देव के इस रूप को पक्षि-राज, पक्षीन्द्र, शरभ, भगवान् शरभेश्वर आदि नामों से पुकारते हैं। इनका **'मन्त्र'** ॐ-**कार**, वाग्-वीज (ऐं), माया-वीज (ह्रीं) और लक्ष्मी-वीज (श्रीं) है। इसके अतिरिक्त एक चत्वरिंशदक्षर (२४) अक्षरों का मन्त्र है। इनका **'ध्यान'** इस प्रकार है—

चन्द्रार्काग्निस्त्रि-दृष्टिः कुलिश-वर-नखश्चञ्चलोऽत्युग्र-जिह्वः।
काली - दुर्गा च पक्षौ हृदय - जठरगो भैरवो वाडवाग्निः॥

ऊरुस्थौ व्याधि - मृत्यू शरभ-वर-खगश्चण्ड-वातातियोगः।
संहर्त्ता सर्व-शत्रून् स जयति शरभः शालुवः पक्षि - राजः॥

अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि जिनके नेत्र हैं, वज्र के समान तीक्ष्ण नख हैं, चञ्चल और उग्र जिह्वा है। काली और दुर्गा उनके दो पक्ष (डैने) हैं, हृदय में भैरव और पेट में बड़वाग्नि है। दोनों जङ्घाओं में व्याधि और मृत्यु हैं, प्रचण्ड आँधी के समान जिनका वेग है। ऐसे भगवान् पक्षि-राज शरभ सुमुख सब शत्रुओं के नाश करनेवाले हैं, उनकी जय हो।

इनका एक 'दारुण सप्तक' सात श्लोकों का है, जिसको आदित्य - वार से लेकर मङ्गल-वार तक रात्रि में दश-बार पढ़ने से शत्रु-बाधा दूर हो जाती है।

वन्दे गुरु-पद-द्वन्द्वमवाङ्-मनस-गोचरम्। रक्त-शुक्ल-प्रभा-मिश्रमतर्क्यं भैरवं महः॥

विनियोग—ॐ अस्य दारुण-सप्तक-महा-मन्त्रस्य श्रीसदा-शिव ऋषिः। बृहती **छन्दः। श्रीशरभो देवता। ममाभीष्ट-सिद्धये जपे विनियोगः।**

ऋष्यादि-न्यास——श्रीसदा-शिव-ऋषये नमः शिरसि। वृहती-छन्दसे नमः मुखे। श्रीशरभ-देवतायै नमः हृदि। ममाभीष्ट-सिद्धये जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

मूल स्तोत्र

कोपोद्रेकाऽति - वीर्यं निखिल-परिकरं तार-हार-प्रदीप्तम्।
ज्वाला-मालाग्निदश्च स्मर-तनु-सकलं त्वामहं शालु-वेशम्॥
याचे त्वत्-पाद-पद्म-प्रणिहित-मनसं द्वेष्टि मां यः क्रियाभिः।
तस्य प्राणावसानं कुरु शिव! नियतं शूल-भिन्नस्य तूर्णम्॥१

शम्भो! त्वद्धस्त - कुन्त-क्षत - रिपु-हृदयान्निस्स्रवल्लोहितौघम्।
पीत्वा पीत्वाऽति-दर्पं दिशि-दिशि सततं त्वद्-गणाश्चण्ड-मुख्याः॥
गर्ज्जन्ति क्षिप्र-वेगा निखिल-भय-हराः भीकराः खेल-लोलाः।
सन्त्रस्त-ब्रह्म-देवा शरभ खग-पते! त्राहि नः शालु - वेश!॥२

सर्वाद्यं सर्व - निष्ठं सकल - भय - हरं नानुरूप्यं शरण्यम्।
याचेऽहं त्वाममोघं परिकर-सहितं द्वेष्टि योऽत्र स्थितं माम्॥
श्रीशम्भो! त्वत्-कराब्ज-स्थित - मुशल-हतास्तस्य वक्ष - स्थलस्थ—
प्राणाः प्रेतेश - दूत-ग्रहण - परिभवाऽऽक्रोश - पूर्वं प्रयान्तु॥३

द्विष्मः क्षोण्यां वयं हि तव पद-कमल - ध्यान - निर्धूत-पापाः।
कृत्याकृत्यैर्वियुक्ताः विहग - कुल - पते! खेलया बद्ध - मूर्ते!
तूर्णं त्वद्धस्त-पद्म-प्रधृत-परशुना खण्ड - खण्डी - कृताङ्गः।
स द्वेष्टी यातु याम्यं पुरमति - कलुषं काल-पाशाग्र-बद्धः॥४

भीम! श्रीशालुवेश! प्रणत-भय-हर! प्राण-हृद् दुर्मदानाम्।
याचे पञ्चास्य - गर्व - प्रशमन - विहित - स्वेच्छयाऽऽबद्ध-मूर्ते!
त्वामेवाशु त्वदंघ्र्यष्टक - नख - विलसद् - ग्रीव - जिह्वोदरस्य,
प्राणोत्क्राम - प्रयास - प्रकटित - हृदयस्यायुरल्पायतेऽस्य॥५

श्रीशूलं ते कराग्र - स्थित - मुशल - गदाऽऽवर्त-वाताभिघाता—
पाताऽऽघातारि - यूथ - त्रिदश - रिपु-गणोद्भूत-रक्तच्छटार्द्रम्॥
सन्दृष्ट्वाऽऽयोधने ज्यां निखिल-सुर-गणाश्चाशु नन्दन्तु नाना—
भूता - वेताल - पुङ्गाः क्षतजमरि - गणस्याशु मत्तः पिवन्तु॥६

त्वद्दोर्दण्डाग्र - शुण्डा - घटित - विनमयच्चण्ड - कोदण्ड - युक्तै—
वर्णैर्दिव्यैरनेकैश्शिथिलित - वपुषः क्षीण - कोलाहलस्य ।।
तस्य प्राणावसानं पर-शिव ! भवतो हेति - राज - प्रभावै—
स्तूर्णं पश्यामियो मां परि-हसति सदा त्वादि-मध्यान्त-हेतो ! ।।७

फल-श्रुति—इति निशि प्रयतस्तु निरामिषो, यम-दिशं शिव-भावमनुस्मरन् ।
प्रति-दिनं दशधाऽपि दिन-त्रयं, जपति यो ग्रह-दारुण-सप्तकम् ।।८

—'कुल-मार्तण्ड' पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री

(४३)

परिवार की सुख-शान्ति हेतु आदि शङ्कराचार्य विरचित

श्रीगणपति स्तोत्र

सुवर्ण - वर्ण - सुन्दरं सितैक-दन्त-बन्धुरं, गृहीत-पाशकांकुशं वर - प्रदाभय - प्रदम् ।
चतुर्भुजं त्रि-लोचनं भुजङ्गमोपवीतिनं, प्रफुल्ल-वारिजासनं भजामि सिन्धुराननम् ।।१

जो सुवर्ण के समान गौर - वर्ण से सुन्दर प्रतीत होते हैं; एक ही श्वेत दन्त के द्वारा मनोहर जान पड़ते हैं; जिन्होंने हाथों में पाश और अंकुश ले रखे हैं; जो वर तथा अभय प्रदान करनेवाले हैं; जिनके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं; जो सर्प - मय यज्ञोपवीत धारण करते हैं और प्रफुल्ल कमल के आसन पर बैठते हैं; उन गजानन का मैं भजन करता हूँ ।।१

किरीट-हार-कुण्डलं प्रदीप्त-बाहु-भूषणं, प्रचण्ड-रत्न-कङ्कणं प्रशोभिताङ्घ्रि-यष्टिकम् ।
प्रभात-सूर्य-सुन्दराम्बर-द्वय-प्रधारिणं, स-रत्न - हेम - नूपुर - प्रशोभिताङ्घ्रि - पङ्कजम् ।।२

जो किरीट, हार और कुण्डल के साथ उद्दीप्त बाहु-भूषण धारण करते हैं, चमकीले रत्नों का कङ्गन पहनते हैं; जिनके दण्डोपम चरण अत्यन्त शोभा - शाली हैं; जो प्रभात - काल के सूर्य के समान सुन्दर और लाल दो वस्त्र धारण करते हैं तथा जिनके युगल चणारविन्द रत्न-जटित सुवर्ण-निर्मित नूपुरों से सुशोभित हैं. उन गणेश जी का मैं भजन करता हूँ ।।२

सुवर्ण-दण्ड-मण्डित-प्रचण्ड-चारु-चामरं, गृह - प्रदेन्दु - सुन्दरं युग - क्षण - प्रमोदितम् ।
कवीन्द्र-चित्त-रञ्जकं महा-विपत्ति-भञ्जकं, षडक्षर-स्वरूपिणं भजे गजेन्द्र - रूपिणम् ।।३

जिनका विशाल एवं मनोहर चँवर सुवर्ण - मय दण्ड से मण्डित है; जो सकाम भक्तों को गृह-सुख प्रदान करनेवाले एवं चन्द्रमा के समान सुन्दर हैं; युगों में क्षण का आनन्द लेनेवाले हैं, जिनसे कवीश्वरों के चित्त का रञ्जन होता है; जो बड़ी - बड़ी विपत्तियों का भञ्जन करनेवाले और षडक्षर मन्त्र - स्वरूप हैं, उन गज-राज-रूप-धारी गणेश का मैं भजन करता हूँ ।।३

विरिञ्चि-विष्णु-वन्दितं विरूप-लोचन-स्तुतं, गिरीश - दर्शनेच्छया समर्पितं पराम्बया ।
निरन्तरं सुरासुरैः स-पुत्र-वाम-लोचनैः, महा-मखेष्ट-कर्मसु स्मृतं भजामि तुन्दिलम् ।।४

ब्रह्मा और विष्णु जिनकी वन्दना तथा विरूप-लोचन शिव जिनकी स्तुति करते हैं; जो गिरीश (शिव) के दर्शन की इच्छा से परा अम्बा पार्वती द्वारा समर्पित हैं; देवता और असुर अपने पुत्रों और वाम-लोचना पत्नियों के साथ बड़े - बड़े यज्ञों तथा अभीष्ट कर्मों में निरन्तर जिनका स्मरण करते हैं; उन तुन्दिल देवता गणेश का मैं भजन करता हूँ ।

मदौघ-लुब्ध-चञ्चलालि-मञ्जु-गुञ्जिता-रवं, प्रबुद्ध-चित्त-रञ्जकं प्रमोद-कर्ण-चालकम् ।
अनन्य-भक्ति-मानवं प्रचण्ड-मुक्ति-दायकं, नमामि नित्यमादरेण वक्र - तुण्ड - नायकम् ।।५

जिनकी मद-राशि पर लुभाए हुए चञ्चल भ्रमर मञ्जु गुञ्जा-रव करते रहते हैं; जो ज्ञानी-जनों के चित्तको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं; अपने कानों को सानन्द हिलाया करते हैं और अनन्य भक्ति रखनेवाले मनुष्यों को उत्कृष्ट मुक्ति देनेवाले हैं; उन वक्र-तुण्ड गण-नायक का मैं प्रति-दिन आदर-पूर्वक भजन करता हूँ ।।५

फल-स्तुति

दारिद्रय - विद्रावणमाशु कामदं, स्तोत्रं पठेदेतदजस्रमादरात् ।
पुत्री कलत्र - स्व - जनेषु मैत्री, पुमान् भवेदेक - वर - प्रसादात् ।।

यह स्तोत्र दरिद्रता को शीघ्र भगानेवाला और अभीष्ट वस्तु को देनेवाला है । जो निरन्तर आदर-पूर्वक इसका पाठ करेगा, वह मनुष्य एकेश्वर गणेश की कृपा से पुत्र-वान् तथा स्त्री एवं स्व-जनों के प्रति मित्र-भाव से युक्तहोगा ।

(४४)

सभी प्रकार की कामनाओं की पूर्ति हेतु

श्रीचण्डिका-हृदय-स्तोत्र

प्रस्तुत मन्त्रात्मक **श्रीचण्डिका-हृदय-स्तोत्र** का सविधि तीनों सन्ध्याओं में पाठ करने से पाठ करनेवाले व्यक्ति को सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। देवास (म० प्र०) जनपद के सन्दलपुर-निवासी पं० श्री नर्मदाप्रसाद जी पुरोहित ने इसे एक हस्त-लिखित पाण्डुलिपि के आधार पर लिखकर भेजने की कृपा की है। प्रति सन्ध्या - काल में इस स्तोत्र का पाठ २१-२१ बार करना चाहिए। केवल पहले पाठ में **विनियोग से ध्यान** तक की प्रारम्भिक क्रिया और अन्तिम **फल-श्रुति** का पाठ करना चाहिए। शेष २० पाठों में मात्र स्तोत्र का पाठ करना चाहिए अर्थात् **ऐं ह्रीं क्लीं** से लेकर **साधय स्वाहा** तक।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीचण्डिका - हृदय - स्तोत्र - मन्त्रस्य श्रीमार्कण्डेय ऋषिः। अनुष्टुप्-छन्दः। श्री चण्डिका देवता। ह्रां वीजं। ह्रीं शक्तिः। ह्रूं कीलकं। श्री चण्डिका-प्रीतये जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीमार्कण्डेय-ऋषये नमः शिरसि। अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे। श्रीचण्डिका-देवतायै नमः हृदि। ह्रां वीजाय नमः लिङ्गे। ह्रीं शक्तये नमः नाभौ। ह्रूं कीलकाय नमः पादयोः। श्रीचण्डिका-प्रीतये जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

षडङ्ग-न्यास	**कर-न्यास**	**अङ्ग-न्यास**
ह्रां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ह्रीं	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
ह्रूं	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
ह्रैं	अनामिकाभ्यां हुं	कवचाय हुं
ह्रौं	कनिष्ठाभ्यां वौषट्	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ह्रः	करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

ध्यान—सर्व-मङ्गल-माङ्गल्ये शिवे सर्वार्थ-साधिके, शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।

ऐं ह्रीं क्लीं ह्रां ह्रीं ह्रूं जय चामुण्डे, चण्डिके, त्रिदश-मणि-मुकुट-कोटीर-सङ्घट्टित-चरणारविन्दे, गायत्रि, सावित्रि, सरस्वति, महाऽहि-कृताभरणे, भैरव-रूप-धारिणि, प्रगटित-दंष्ट्रोग्र-वदने, घोरे, घोरानने, ज्वल ज्वल ज्वाला-सहस्र-परिवृते, महाऽट्टहास-वधिरी-कृत-दिगन्तरे, सर्वायुध-परिपूर्णे, कपाल-हस्ते, गजाजिनोत्तरीये, भूत-वेताल-वृन्द-परिवृते, प्रकम्पित-चराचरे, मधु-कैटभ-महिषासुर-धूम्रलोचन-चण्ड-मुण्ड-रक्तवीज-शुम्भ-निशुम्भादि-दैत्य-निष्कण्टके, काल-रात्रि, महा-माये, शिवे, नित्ये, इन्द्राग्नि-यम-निर्ऋति-वरुण-वायु-सोमेशान-प्रधान-शक्ति-भूते, ब्रह्म-विष्णु-शिव-स्तुते, त्रिभुवन-धराधारे, वामे, ज्येष्ठे, वरदे, रौद्रि, अम्बिके, ब्राह्मि, माहेश्वरि, कौमारि, वैष्णवि, शङ्खिनि, वाराहीन्द्राणि, चामुण्डे, शिव-दूति, महा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-स्वरूपे, नाद-मध्य-स्थिते, महोग्र-विषोरग-फणाफणि-घटित-मुकुट-कटकादि-रत्न-महा-ज्वाला-मय-पाद - बाहु - कण्ठोत्तमाङ्गे, मालाऽऽकुले, महा-महिषोपरि-गन्धर्व-विद्याधराराधिते, नव-रत्न-निधि-कोशे, तत्त्व-स्वरूपे, वाक्-पाणि-पाद-पायूपस्थात्मिके, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धादि-स्वरूपे, त्वक्-चक्षु-श्रोतृ-जिह्वा-घ्राण-महा-बुद्धि-स्थिते, ओंकार-ऐंकार-ह्रींकार-क्लींकार-हस्ते !

आं क्रों आग्नेय - नयन - पात्रे प्रवेशय प्रवेशय, द्रां शोषय शोषय, द्रीं सुकुमारय सुकुमारय, श्रीसर्वं प्रवेशय प्रवेशय ।

त्रैलोक्य-वर-वर्णिनि ! समस्त-चित्तं वशी कुरु-कुरु, मम शत्रून् शीघ्रं मारय मारय, जाग्रत् - स्वप्न - सुषुप्त्यवस्थास्वस्मान् राज-चौराग्नि-जल-वात-विष-भूत-शत्रु-मृत्यु-ज्वरादि-स्फोटकादि-नाना-रोगेभ्यो नानापवादेभ्यः पर-कर्म-मन्त्र-तन्त्र-यन्त्रौषध-शल्य-शून्य-क्षुद्रेभ्यः सम्यङ् मां रक्ष रक्ष । ओं ऐं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः, स्फ्रां स्फ्रीं स्फ्रूं स्फ्रैं स्फ्रौं, मम सर्व-कार्य-कर्माणि साधय साधय हुं फट् स्वाहा । राज-द्वारे श्मशाने वा विवादे शत्रु-सङ्कटे । भूतानि-चोर-मध्यस्थे मम कार्याणि साधय स्वाहा ।

फल-श्रुति

चण्डिका-हृदयं गुह्यं, त्रि-सन्ध्यं यः पठेन्नरः । सर्व-काम-प्रदं पुंसां, भुक्ति मुक्ति प्रयच्छति ।।

(४५)

श्री शनि-स्तोत्रम्

कोणस्थः पिंगलो वभ्रुः कृष्णो रौद्रान्तको यमः, सौरिः शनिश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः । एतानि दश नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्, शनिश्चर-कृत-पीडा न कदा-चिद् भविष्यति ।।

कोणस्थ, पिङ्गल, वभ्रु, कृष्ण, रौद्र, अन्तक, यम, सौरि, शनिश्चर, मन्द—इन नामों द्वारा पिप्पलाद मुनि ने स्तुति की है । जो व्यक्ति प्रातः-काल उठकर इन दश नामों को पढ़ता है, उसे शनि की पीड़ा कभी नहीं होती ।

(४६)

श्री शनि-भार्या स्तोत्रम्

ध्वजिनी धामिनी चैव कङ्काली कलह-प्रिया, कलही कण्टकी चापि अजा महिषी तुरंगमा । नामानि शनि-भार्यायाः नित्यं जपति यः पुमान्, तस्य दुःखानि नश्यन्ति सुखं सौभाग्यमेधते ।।

ध्वजिनी, धामिनी, कङ्काली, कलह-प्रिया, कलही, कण्टकी, अजा, महिषी, तुर-ङ्गमा । जो मनुष्य शनि - पत्नी के इन नामों को नित्य जपता है, उसके सब दुःख नष्ट होकर सुख, सौभाग्य की वृद्धि होती है ।—श्री जगदीशशरण बिलगइयाँ, दतिया (म. प्र.)

(४७)

विविध फल-दायिनी श्रीचित्रसेन-साधना

मन्त्र—क्लीं राजन् गन्धर्व-गगनाश्रय-चित्रसेन ! कन्यां प्रयच्छ मे स्वाहा ।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीचित्रसेन-मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, विराट् छन्दः, गन्धर्व-प्रवर-श्रीचित्रसेन देवता, अभीष्ट-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—शिरसि ब्रह्मा - ऋषये नमः । मुखे विराट्-छन्दसे नमः । हृदि गन्धर्व-प्रवर-श्रीचित्रसेन-देवतायै नमः । अभीष्ट-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।।

मन्त्र	**कर-न्यास**	**षडङ्ग-न्यास**
क्लीं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः ।
राजन्	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा ।
गन्धर्व	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट् ।
गगनाश्रय	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम् ।
चित्रसेन	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट् ।
कन्यां प्रयच्छ मे स्वाहा	कर-तल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट् ।।

ध्यान—द्वादश-स्त्री - परिवृतं सुर-सङ्घ-पुरस्सरम् ।
कामदं चित्र-सेनाख्यं, कन्या-दान-सुदीक्षितम् ।।
वन्दे गन्धर्व-राजानं, मणि-माला-विभूषितम् ।
सुधर्माधिष्ठितं नित्यं, शुद्ध-चामीकर-प्रभम् ।।

उक्त '**ध्यान**' कर '**मानसिक-पूजन**' कर '**जप**' करें। पूर्व-सेवा (पुरश्चरण) की आवश्यकता नहीं है। सीधे 'प्रयोग' किए जा सकते हैं।

(१) छः मास तक, नित्य १०८ 'जप' करने से **अभीष्ट कन्या की प्राप्ति** होती है।

(२) नित्य लाजा (लाई, धान के फूले) और पुष्पों से २२ बार 'हवन' और १२ बार 'तर्पण' करें, तो **सुन्दर कन्या की प्राप्ति** होती है।

(३) बच, पिप्पली (लैंड़ी पीपर) और निर्गुण्डी (सम्हालू) की जड़-सभी सम-भाग लेकर, शुभ दिन उक्त मन्त्र से ८०० बार अभिमन्त्रित कर सेवन करनेवाला **गान-विद्या में निपुण** हो जाता है।

(४) दस दिनों तक गौ-घृत को १०८ बार उपर्युक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करके पीनेवाला **गन्धर्व के समान सुन्दर रूपवाला** हो जाता है।

(५) सोम-वार या गुरु-वार को घी के साथ मिलाकर जिस रङ्ग के पुष्पों से २०० बार उक्त मन्त्र से 'हवन' किया जाता है, साधक को उसी रङ्ग के कपड़ मिलते हैं।

(६) सोम-वार के दिन विनायक (गणेश) पूजन करके, उत्तराभिमुख होकर, उक्त मन्त्र का ८०० जप करके, दूध से ४०० बार हवन करें और बचे हुए दूध को पी जायँ, तो **साधक की वाणी नदी के समान वेगवती** हो जाती है।

(७) भानु (अर्क, अकौवा, मदार) के फूलों को सरसों के तेल में भिगोकर ८०० 'जप' और ८०० हो 'हवन' करें, तो शत्रु का उच्चाटन होता है, इसमें संशय नहीं।

विशेष--प्रयोग-संख्या ३, ४ में औषधि और घृत की मात्रा १ तोला।

(४८)

गौ-रक्षक अर्जुन नामावली

अर्जुनः फाल्गुनी जिष्णुः, किरीटी श्वेत-वाहनः। बीभत्सुर्विजयी पार्थः, सव्यसाची धनञ्जयः॥
कपि-ध्वजो गुडाकेशो, गाण्डीवो कृष्ण-सारथिः॥
एतान्यर्जुन-नामानि, गवां गोष्ठे च यो लिखेत्। न तत्र पशु-रोगादि, शुभं शीघ्रं प्रजायते॥

अर्जुन, फाल्गुनी, जिष्णु, किरीटी, श्वेत-वाहन, बीभत्सु, विजयी, पार्थ, सव्य-साची, धनञ्जय, कपि-ध्वज, गुडाकेश, गाण्डीव और कृष्ण-सारथी—अर्जुन के ये नाम गौ-शाला में लिखने से पशुओं को किसी प्रकार के रोग नहीं होते तथा शीघ्र ही शुभ होता है। यदि पहले से पशुओं को रोग आदि हो, तो वे जल्दी ठीक हो जाते हैं।

विधि—इन नामों को गो-शाला की दीवारों पर 'गेरू' से लिखना चाहिए। 'भोज-पत्र' पर लिखकर पशुओं के गले में पहनाना भी उत्तम होता है।

(४९)

सर्प-भय-विनाशक नागिनी द्वादश नाम स्तोत्र

जरत्कारुर्जगद्-गौरी, मनसा सिद्ध-योगिनी। वैष्णवी नाग-भगिनी, शैवी नागेश्वरी तथा॥
जरत्कारु-प्रियाऽऽस्तीक-माता विष-हरेति च। महा-ज्ञान-युता चैव, सा देवी विश्व-पूजिता॥
द्वादशैतानि नामानि, पूजा-काले तु यः पठेत्। तस्य नाग-भयं नास्ति, सर्वत्र विजयी भवेत्॥

जरत्कारु, जगद्-गौरी, मनसा, सिद्ध-योगिनी, वैष्णवी, नाग-भगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारु-प्रिया, आस्तीक-माता, **विष-हरा और महा-ज्ञानयुता**--नामक देवी सारे संसार में पूजी जाती है। पूजन-काल में जो व्यक्ति इन बारह नामों को पढ़ता है, उसे नाग का भय नहीं होता और सभी कार्यों में विजय मिलती है।

—श्री भैरवानन्दनाथ, १०८ चकराघाट, सागर (म० प्र०)

प्रभु का स्मरण क्यों ?

☐ यमराज ने वरदान देते समय नचिकेता से स्त्री, वैभव, राज्य, हाथी - घोड़े, दीर्घ आयुष्य आदि माँगने को कहा, पर उसने उत्तर दिया - **'आज देकर कल आप मुझसे यह सब छीन लेंगे । मुझे तो ऐसा वर दीजिए कि आपके अर्थात् काल के पञ्जे से मैं छूट जाऊँ और मुझे स्थायी 'सुख' प्राप्त हो ।'**

दुनिया बाह्य विषयों को 'सुख' मानती है, पर सच देखा जाए तो वह **'सुख' - 'दुःख'** का बाप है । इन्द्रियों के विषय, जो कि शब्द - स्पर्श - रूप - रस - गन्ध आदि हैं, दुःख को उत्पन्न करनेवाले हैं, ऐसा मानना चाहिए । **'स्थायी सुख'** प्राप्त करने के लिए **'प्रभु' का स्मरण** करना जरूरी है । उसी के चरणों में **'परम शान्ति और सुख'** मिल सकता है क्योंकि उसके मिलने पर और किसी प्रकार की 'स्पृहा' नहीं रहती ।

☐ यदि अपने चारों ओर कीचड़ हो, तो उससे बचने के लिए शरीर पर स्नेह अर्थात् तेल लगाना चाहिए । इससे कीचड़, शरीर के छिद्रों में घुसने नहीं पाएगा और रक्त नहीं बिगड़ेगा । ठीक इसी तरह मनुष्य - मात्र षड् - रिपु, ईषणा - त्रय (१.पुत्रैषणा २.वित्तैषणा और ३.लोकैषणा), अष्ट - पाश (१.घृणा, २.शंका, ३.भय, ४.लज्जा, ५.जुगुप्सा, ६.कुल, ७.शील और ८.जाति), द्वित्व (१.सुख, २.दुःख अथवा १.हानि, २.लाभ आदि) इत्यादि के कीचड़ से घिरा हुआ है । यह कीचड़ मन को न लगे, इसलिए **'प्रभु' - स्मरण** - रूपी स्नेह लगाने की जरूरत है । तेल का पूरा असर हो, इसलिये जैसा शरीर हो, वैसा ही तेल लगाना चाहिए । चमड़ी मोटी हो, तो तेल ज्यादा रगड़ना चाहिए, मुलायम हो तो थोड़ा ही रगड़ने से तेल शरीर में रम जायगा । इसी तरह जैसा मन हो, वैसी ही **'प्रभु- स्मरण'** - रूपी रगड़ होनी चाहिए । मन के छिद्रं में 'प्रभु' - स्मरण - रूपी स्नेह प्रविष्ट हो, इसलिए अच्छी रगड़ की जरूरत है । मात्र तेल पोतने से कुछ नहीं होगा । स्मरण- रूपी तेल अच्छी रीति से नहीं रगड़ोगे, तो मन पर लगी हुई कालिमा उतना नहीं हटेगी ।

'प्रभु' - चिन्तन में कितना आनन्द है, कितनी चिन्ता कम होती है, यह चिन्तन किए बिना मालूम नहीं पड़ता । मन पर वैषयिक जगत् का कीचड़ न लगे, इसलिए **'प्रभु' - चिन्तन** आवश्यक है ।

☐ जगत् के लोग इस विश्व के आदि कारण को अल्ला, खुदा, गॉड, प्रभु इत्यादि नामों से याद करते हैं । जीव उनके पीछे हैरान रहता है क्योंकि जीव, दुःख के भय से छूटना चाहता है । मानव - मात्र 'सुख' को चाहता है लेकिन जहाँ सुख है, वहाँ दुःख भी है और दुःख को दूर करने के लिए दुनिया **ईश्वर का भजन** करती है ।

मनुष्य - देह में रहनेवाला जीव — १.मन, २.बुद्धि, ३.चिद् और ४.अहंकार की चैतन्य - समष्टि का बना हुआ है । चिद् अर्थात् चिद् - शक्ति सम्पूर्ण विश्व में अणु - अणु में व्याप्त है । सत्, चिद् ,आनन्द —ये तीनों एक ही चीज हैं । आनन्द अर्थात् **सच्चा 'सुख',** सदैव 'मन' के साथ रहता है । चिद् की प्रतिच्छाया 'मन' पर हर समय पड़ती रहती है । इसलिए मन, आनन्द अर्थात् 'सुख' को चाहता है ।

'सुख' की शोध में 'मन' को इन्द्रियों द्वारा बाह्य आकर्षण का अनुभव होता है और 'मन' उसको या उसमें ही 'सुख' मानकर, उसे भोगना चाहता है, पर उसमें उसको **सच्चा 'सुख'** नहीं मिलता । **सच्चा 'सुख'** तो चिदाभास होने पर ही मिलता है क्योंकि मात्र **चिद् ही 'सुख' है — आनन्द है ।**

ॐ श्रीं

धन-त्रयोदशी (धन-तेरस)

नरक-चतुर्दशी

अन्न-कूट (गोवर्द्धन-पूजा) एवं भ्रातृ-द्वितीया (यम-द्वितीया)

सहित

'दीपावली' की पूजा-विधि

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्रीऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, प्रयाग-२११ ००६